UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180892

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/C49R Accession No. G.H.681

Author चट्टोपाध्याय, बङ्किमचंद्र

Title रजनी । 1940

This book should be returned on or before the date last marked below.

रजनी

लेखक

उपन्यास-सम्राट

वङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

श्री सूर्य्यकान्त त्रिपाठी, निराला

हिन्दी पुस्तक भण्डार
आर. जी. तोषणी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

१९४०

मूल्य ॥) आने

Printed and published by
K. Mittra, at The Indian Press, Ltd.
ALLAHABAD.

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

१—रजनी की कथा १
२—अमरनाथ की कथा ३१
३—शचीन्द्र की कथा ५१
४—सबकी बात ७३
५—अमरनाथ की कथा ९६

रजनी

प्रथम खण्ड

रजनी की कथा

पहला परिच्छेद

तुम लोगों के सुख-दुःख में मेरा सुख-दुःख परिमित नहीं हो सकता । तुम्हारी और मेरी जुदा प्रकृति है । मेरे सुख से तुम लोग सुखी नहीं हो सकोगे—मेरा दुःख तुम लोग नहीं समझोगे—मैं एक छोटी जुही की सुगन्ध से सुखी हूँगी, और सोलह-कला-वाला चाँद मेरी आँखों के सामने हज़ार तारों के बीच में खिलने पर भी मैं सुखी नहीं हूँगी—मेरा उपाख्यान तुम लोग मन लगाकर सुनोगे ? मैं जन्मान्ध हूँ ।

किस तरह समझोगे ? तुम लोगों का जीवन दृष्टिमय है—मेरा जीवन अन्धकार—दुःख यही है, मैं इसे अन्धकार नहीं समझती । मेरी इन बन्द आँखों में यही उजाला है । नहीं जानती तुम्हारा उजाला कैसा है ।

इसी लिए क्या मेरे सुख नहीं ? ऐसा नहीं । सुख-दुःख तुम्हारा मेरा प्रायः बराबर है । तुम रूप देखकर सुखी होते हो, मैं शब्द सुनकर सुखी होती हूँ । देखो, इन छोटी छोटी जुही की कलियों के वृन्त कितने सूक्ष्म हैं, और मेरे हाथ की सुई का अगला हिस्सा और कितना सूक्ष्म ! मैं सुई से इन छोटे फूलों के वृन्त वेधकर माला गूँथती हूँ—बचपन से माला ही

गूँथी है—मेरी गूँथी माला पहनकर किसी ने कभी नहीं कहा कि अन्धी ने माला गूँथी है।

मैं माला ही गूँथती थी। बालीगञ्ज के प्रान्तभाग में मेरे पिता का एक बग़ीचा फूलों का था, उसी से उनकी जीविका थी। फागुन के महीने से जब तक फूल खिलते थे, पिता रोज़ वहाँ से फूल चुन लाते थे, मैं मालायें गूँथ देती थी। पिता महानगरी के रास्ते-रास्ते घूमकर बेचते थे। मा घर का काम करती थीं। अवकाश होने पर माता-पिता दोनों माला गूँथने में मेरी सहायता करते थे।

फूलों का स्पर्श बड़ा मधुर है। पहनने में शायद बहुत ही मधुर होगा—सूँघने में ज़रूर है। परन्तु माला गूँथने पर गुज़र नहीं होती। अन्न के पेड़ों में फूल नहीं, इसलिए पिता बहुत ही ग़रीब थे। मिर्ज़ापुर (कलकत्ता) में एक मामूली खपरैले मकान में रहते थे। उसी के एक बग़ल फूल बिछाकर, फूलों की राशि लगाकर, फूल फैलाकर मैं माला गूँथती थी।

"मेरी इतनी साध की सुबह,
पर खिली न फिर भी कली, अरी!"

अन्धी थी, इसलिए मेरा विवाह नहीं हुआ। यह सौभाग्य है या दुर्भाग्य, जिसके आँखें हैं, वही समझेगी। आँखों की चोट करनेवाली बहुत-सी रँगीली युवतियाँ मेरे चिरकुमारीपन की बात सुनकर कह गई हैं, "अहा, मैं भी अगर अन्धी होती!"

विवाह न हो, इससे मुझे दुःख नहीं था। मैं स्वयंवरा हुई थी। एक दिन पिता से कलकत्ते की वर्णना सुन रही थी। सुना, मनूमेन्ट तअज्जुब में डालता है, बहुत ऊँचा है, अचल-अटल, तूफ़ान से नहीं टूटता, गले में ज़ञ्जीर है, अकेला एक ही बाबू है। मैंने मन-ही-मन मनूमेन्ट से विवाह किया। मेरे पति से बड़ा कौन है? मैं मनूमेन्ट की बड़ी रानी हूँ।

केवल एक ही विवाह नहीं। जब मनूमेन्ट से विवाह किया था, तब मेरी उम्र पन्द्रह साल की थी। सत्रह साल की उम्र में, कहते लाज लगती है, सुहागिन हालत में ही एक और ब्याह हो गया। मेरे मकान के पास कालीचरण बसु नाम के एक कायस्थ रहते थे। चीनाबाज़ार में उनकी खिलौने की एक दूकान थी। वे कायस्थ थे, हम भी कायस्थ हैं। इसी लिए कुछ आत्मीयता हो गई थी। काली बसु के एक चार साल का बच्चा था, नाम वामाचरण। वामाचरण सदा हमारे घर आता था। एक दिन एक दूल्हा बाजे-गाजे के साथ धीरे धीरे चलती आँधी की तरह हमारे मकान के सामने से गुज़रा। देखकर वामाचरण ने पूछा, "वह कौन ऐ?"

मैंने कहा, "वह दूल्हा है।" वामाचरण सुनकर रोने लगा—"मैं दूला ऊँदा।"

उसे किसी तरह नहीं चुपा सकी, तब कहा, "रो मत, तू मेरा दूल्हा है।" यह कहकर एक सन्देश हाथ में रखकर मैंने पूछा, "क्यों, तू मेरा दूल्हा बनेगा?" बच्चा सन्देश हाथ में आते ही चुप होकर बोला, "बनूँदा।"

सन्देश ख़त्म करके बच्चे ने कुछ देर बाद पूछा, "ए—, दूला क्या कलता ऐ?" जान पड़ता है, उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि दूल्हा सिर्फ़ सन्देश खाता है। अगर ऐसा हो तो वह एक और सन्देश खाना शुरू करे। मतलब ताड़कर मैंने कहा, "दूल्हा फूल चुन देता है।" वामाचरण पति का काम समझकर फूल चुनकर मेरे हाथ में देने लगा। उसी दिन से मैं उसे दूल्हा कहती हूँ, वह चुन चुनकर मेरे हाथ में फूल पकड़ा देता है।

मेरे ये दो विवाह हैं—अब इस समय की जटिला-कुटिलाओं से मेरा प्रश्न है, क्या मैं सती कहला सकती हूँ?

दूसरा परिच्छेद

बड़े घराने में फूल देना मुश्किल मुक़ाम है। पुराने ज़माने की मालिन मौसी राजा के यहाँ फूल देती हुई मरघट गई थी। फूलों की शहद पी विद्यासुन्दर ने, घूँसा खाया। हीरा मालिन ने, क्योंकि वह बड़े घराने में फूल पहुँचाती थी। सुन्दर के लिए वही रामराज्य हुआ, लेकिन मालिनवाला घूँसा फिर नहीं लौटा।

पिता जी तो "बेले के गजरे" के नारे लगाते हुए क़द्रदाँओं के मुहल्ले में हार बेचते थे, मा दो-एक साधारण घरों में रोज़ फूल पहुँचाती थीं। इनमें रामसदय मित्र का मकान ही ख़ास है। रामसदय मित्र के साढ़े चार घोड़े थे—(नातियों के लिए एक टट्टू था, बाक़ी चार बड़े घोड़े थे) साढ़े चार घोड़े और डेढ़ गृहिणी। एक पूरी और एक सदा बीमार रहनेवाली और पुरानी। उनका नाम भुवनेश्वरी था, लेकिन उनके गले की सायँ सायँ आवाज़ सुनकर राममणि के अलावा दूसरा नाम मेरे मन में नहीं उठता था।

और जो एक पूरी गृहिणी थीं, उनका नाम लवङ्गलता था। लवङ्गलता लोग कहते थे, लेकिन उनके पिता ने नाम रक्खा था ललित लवङ्गलता, और रामसदय बाबू आदर करके पुकारते थे, "ललित-लवङ्गलता-परिशीलन-कोमल-मलय-समीरे।" रामसदय बाबू पुराने आदमी थे, उम्र ६३ साल। लवङ्गलता नवीना थी, उम्र १९ साल। दूसरी स्त्री आदर की मूर्ति, गौरव की चीज़, मान की हद, आँख का तारा, सोलहों आने गृहिणी थी। वे रामसदय बाबू के लिए सन्दूक़ की ताली, बिछौने की चादर, पान का चून, गिलास का पानी थीं। वे रामसदय के बुख़ार में कुइनाइन, खाँसी में इपिका, बात में फ्लानेल और आरोग्य में शोरवा थीं।

आँखें नहीं हैं, लवङ्गलता को मैं कभी देख नहीं पाई, परन्तु सुना है, वे रूपवती थीं। रूप दरकिनार, गुणों के बारे में सुना है, लवङ्ग

वास्तव में गुणवती थीं। घर के काम में निपुण, दान में खुले हाथवाली, हृदय की सरला, सिर्फ़ बातचीत में ज़हर उगलनेवाली थीं। लवङ्गलता के अनेक गुणों में एक यह है कि वे पितामह जैसे उस पति को वास्तव में प्यार करती थीं—कोई नवीना नये पति को वैसा करती हैं या नहीं, इसमें सन्देह है। प्यार करती थीं, इसलिए उन्हें नवीन रूप से सज्जित करती थीं; वह लाज की बात किससे कहूँ? अपने हाथों सफ़ेद बालों में ख़िज़ाब लगाकर उन्हें काला करती थीं। अगर रामसदय किसी दिन लज्जा के कारण मलमल की धोती पहनते थे, तो अपने हाथ से, उसे छोड़वाकर, कोयल-सी काली किनारीवाली, फ़ीते की किनारीवाली या फूलदार किनारीवाली धोती पहनाती थीं—मलमल की धोती उसी वक़्त ग़रीब विधवाओं को दे देती थीं। रामसदय उतनी उम्र में इत्र की शीशी देखकर भय से भगते थे; लवङ्ग सोते वक़्त उनकी देह भर में इत्र लगा देती थी रामसदय के चश्मे लवङ्ग चुराकर प्रायः तोड़ डालती थीं। सोना निकाल किसी की लड़की की शादी होनेवाली होती तो उसे दे देती थीं। रामसदय की नाक बोलने लगती थी तो लवङ्ग कई जोड़ी छड़े निकाल कर पहनकर घर भर झमाझम करती फिरती रामसदय की नींद उखाड़ देती थीं।

लवङ्गलता हमारे फूल ख़रीदती थीं—चार आने के फूल के दो रुपये क़ीमत देती थीं। इसकी वजह यह कि मैं अन्धी थी। माला मिलने पर लवङ्ग गालियाँ सुनाती थीं, कहती थीं, "ऐसी भद्दी माला मुझे क्यों देती है?" लेकिन दाम चुकाते समय अधन्ने के साथ रुपया देती थीं। लौटाने पर कहती थीं, वह मेरा रुपया नहीं है। दोबारा कहने को चलने पर गालियाँ देकर खदेड़ देती थीं। उनके दान की चर्चा चलाने पर मारने दौड़ती थीं। सच बात यह है कि रामसदय बाबू का घर न रहने पर मेरे दिन न पार होते। दिन चले जाने पर ही मैं सन्तुष्ट रहती थी। लवङ्गलता मुझसे राशि-राशि फूल ख़रीद कर रामसदय बाबू को सजाती थीं। सजाकर कहती थीं, "देखो,

रतिपति !" रामसदय कहते थे, "देखो, साक्षात् अञ्जनानन्दन हूँ।" उस प्राचीन से नवीन के मन का मेल था, दर्पण में जैसे दोनों दोनों का मन देखते थे। उनके प्रेम की पद्धति ऐसी थी।

रामसदय कहते थे, "ललित-लवङ्ग-लता-परिशी...?"

लवङ्ग०—जी, बूढ़े दादा जी, दासी हाज़िर हुई।

राम०—मैं अगर मरूँ ?

लवङ्ग०—मैं तुम्हारी जायदाद उड़ाऊँगी।

लेकिन मन-ही-मन कहती थीं, "मैं ज़हर खा लूँगी।" रामसदय मन-ही-मन यह जानते थे।

लवङ्ग इतने रुपये देती थी, फिर भी बड़े मकान में फूल पहुँचाने में इतनी अड़चन क्यों है ? सुनो।

एक दिन मा को बुख़ार आया। मकान के भीतर पिता की पहुँच नहीं होगी, फिर, मेरे सिवा और कौन लवङ्गलता को फूल पहुँचाने जायगी ? मैं लवङ्ग के लिए फूल लेकर चली। अन्धी होऊँ—कुछ भी होऊँ, कलकत्ते की गली-गली, कूचा-कूचा मुझे मालूम था। छड़ी टेककर सब जगह पहुँच सकती थी। कभी गाड़ी-घोड़े के सामने नहीं आई। बहुत दफे पैदल चलनेवालों पर गिरी हूँ। इसकी वजह अन्धी युवती देखकर कोई कोई आहट नहीं देते थे, बल्कि कहते थे, अरी मर, देख नहीं पाती ? अन्धी है क्या ?" मैं सोचती थी, "दोनों ओर से !"

फूल लेकर लवङ्ग के पास गई। देखकर लवङ्ग ने कहा, "क्यों री अन्धी, फिर फूल लेकर क्यों मरने आई है ?" अन्धी कहने पर मेरे हाड़ जल जाते थे; मैं एक कड़ुवा जवाब देने चली थी, ऐसे समय एकाएक किसी के पैरों की आहट सुन पड़ी, कोई आया, जो आया उसने पूछा, "यह कौन है छोटी मा ?" छोटी मा ! तो रामसदय का लड़का होगा। रामसदय का कौन लड़का ? बड़े लड़के का गला एक दिन सुना था, वह इतना अमृत भरा नहीं—इस तरह कानों को भरकर सुख नहीं ढाल दिया। समझी, ये छोटे बाबू हैं।

छोटी मा ने कहा, अब के बड़े मधुर कण्ठ से कहा, “वह अन्धी फूलवाली है।”

“फूलवाली ? मैंने सोचा था, किसी भले घर की लड़की है।”

लवङ्ग ने कहा, “क्यों, फूलवाली होने पर किसी भले घर की लड़की नहीं हो सकती ?”

छोटे बाबू अप्रतिभ हुए। कहा “हो क्यों नहीं सकती ? यह तो भले घर की लड़की जैसी मालूम पड़ती है। लेकिन यह अन्धी किस तरह हुई ?”

लवङ्ग—वह जन्मान्ध है।

छोटे बाबू—देखूँ ?

छोटे बाबू की विद्या की बड़ी तारीफ़ थी। उन्होंने दूसरी विद्या जिस मिहनत से सीखी थी, धन की आकाङ्क्षा न रखते हुए चिकित्साशास्त्र भी उसी मिहनत से सीखा था। लोग तारीफ़ करते थे कि शचीन्द्र बाबू (छोटे बाबू) सिर्फ़ ग़रीबों की बिना दाम चिकित्सा करने के लिए चिकित्सा सीख रहे थे। “देखूँ” कहकर मुझसे कहा, “एक दफ़ा खड़ी तो हो जाओ।”

मैं सिकुड़कर खड़ी हो गई।

छोटे बाबू ने कहा, “मेरी तरफ़ देखो।” क्या ख़ाक देखूँ ?

“मेरी तरफ़ आँखें फेरो।”

“फूटी आँखों शब्दभेदी तीर चलाये। छोटे बाबू के मन के मुआफ़िक़ नहीं हुआ। उन्होंने मेरी दाढ़ी पकड़ कर मुँह फेरा।

डाक्टरी के मुँह में आग लगाऊँ। मैं उस चिबुकस्पर्श से मर गई।

वह स्पर्श पुष्पमय था। उस स्पर्श से जुही, चमेली, बेला, हरसिंगार, कामिनी, गुलाब—सब फूलों की सुगन्ध मिली। जान पड़ा, मेरे आस-पास फूल हैं, मेरे सिर पर फूल हैं, मेरे पैरों में फूल हैं, मेरे पहनावे में फूल हैं, मेरे हृदय के भीतर फूलों की राशि है। अहा! किस विधाता ने यह कुसुममय स्पर्श गढ़ा था! कह चुकी हूँ, अन्धी का सुख-दुःख तुम लोग नहीं समझ सकोगी। अहा ! वह नवनीत-सुकुमार पुष्पगन्धमय वीणाध्वनिवत्

स्पर्श ! वीणाध्वनिवत् स्पर्श, जिसके आँखें हैं, वह कैसे समझेगी ? मेरा सुख-दुःख मुझी में रहे। जब उस स्पर्श की याद आती थी, तब कितनी वीणाओं की ध्वनि जैसे मैं सुनती थी, यह विलोल कटाक्ष से कुशल तुम क्या समझोगी ?

छोटे बाबू ने कहा, "नहीं, यह अन्धी अच्छी नहीं होगी।"

मेरी तो इसलिए आँखें नहीं लगती थीं।

लवङ्ग ने कहा, "न अच्छी हो, मगर रुपया ख़र्च करने पर क्या अन्धी का ब्याह भी नहीं हो सकता ?"

छोटे बाबू—क्यों, क्या इसकी शादी नहीं हुई ?

लवङ्ग—नहीं। रुपया ख़र्च करने पर होगी ?

छोटे बाबू—आप क्या उसके विवाह के लिए रुपया देंगी ?

लवङ्ग को ग़ुस्सा आया। कहा, "ऐसा लड़का भी तो नहीं देखा। हमारे क्या रुपया रखने की जगह नहीं ? ब्याह क्या हो सकता है ? यह पूछते हैं। स्त्रियों को कुल बातों की ख़बर तो रहती नहीं। ब्याह क्या हो सकता है ?"

छोटे बाबू छोटी मा को पहचानते थे। कहा, "अच्छा मा, तुम रुपया रक्खो, मैं ब्याह करूँगा।"

मन-ही-मन लवङ्गलता को जहन्नुम भेजती हुई मैं वहाँ से भगी।

इसीलिए कह रही थी, बड़े घराने में फूल पहुँचाते बड़ी आफ़तें हैं।

हे अनेक मूर्तिवाली वसुन्धरे ! तुम देखने में कैसी हो ? तुम जो असङ्ख्य, अचिन्तनीय शक्ति धारण करती हो, अनन्त विचित्रता से पूर्ण जड़-पदार्थ हृदय में रखती हो, वे सब देखने में कैसे हैं ? जिन्हें जिन्हें लोग सुन्दर कहते हैं, वे सब देखने में कैसे हैं ? तुम्हारे हृदय पर जो असङ्ख्य बहुप्रकृतिवाले जन्तु विचरण करते हैं, वे सब देखने में कैसे हैं ? कहो, माता, तुम्हारे हृदय की सारभूत पुरुष-जाति देखने में कैसी है ? दिखाओ मा, उसके भीतर जिसके करस्पर्श में इतना सुख है, वह देखने में कैसा है ? दिखा मा, देखने में कैसा लगता

है ? देखना क्या है ? देखना कैसा है ? देखने पर कैसा सुख होता है ? एक मुहूर्त के लिए यह सुखमय स्पर्श मैं नहीं देख पा सकती ? दिखा, मा ! बाहर की आँखें बन्द रहें तो रहने दे, मा ! मेरे हृदय की आँखें खोल दे; मैं एक बार अन्तर के भीतर अन्तर को छिपाकर पूरी साध से रूप देखकर नारीजन्म सार्थक करूँ। सब देखते हैं, मैं क्यों नहीं देखूँगी ? शायद कीट-पतङ्ग तक देखते हैं, मैं किस अपराध से नहीं देख पाती ? सिर्फ़ देखना—किसी को क्षति नहीं, किसी को कष्ट नहीं, किसी को पाप नहीं, सब अनायास देखते हैं—किस अपराध से मैं कभी देख नहीं पाऊँगी ?

नहीं, नहीं। अदृष्ट में नहीं है। हृदय में खोजा, केवल शब्द, स्पर्श, गन्ध है। और कुछ नहीं मिला।

मेरे अन्तर को चीर कर ध्वनि उठने लगी, कौन दिखायेगी, दिखा री—मुझे रूप दिखा ! नहीं समझी ! अन्धी का दुःख कोई नहीं समझी।

तीसरा परिच्छेद

उस दिन से मैं प्रायः प्रतिदिन रामसदय मित्र के मकान फूल बेचने जाती थी। परन्तु क्यों, यह नहीं जानती। जिसके आँखें नहीं, उसका यह प्रयत्न क्यों ? वह देख नहीं पायेगी, सिर्फ़ शब्द सुनने की तसल्ली है। क्यों शचीन्द्र बाबू मेरे पास आकर बातचीत करेंगे ? वे रहते हैं दीवानख़ाने में, मैं जाती हूँ महल के अन्दर। यदि उनकी स्त्री रहती तो भी कभी आते। परन्तु एक साल पहले उनकी स्त्री की मृत्यु हो गई थी। फिर उन्होंने विवाह नहीं किया, इसलिए यह भरोसा भी नहीं। कदाचित् किसी प्रयोजन से माताओं के पास आते थे। मैं जिस समय फूल लेकर जाऊँगी, वे भी ठीक उसी समय आयेंगे, इसी की क्या सम्भावना

है ? अस्तु, जो एक शब्द सुनने की आशा है, वह भी यद्यपि सफल नहीं होती थी, फिर भी अन्धी प्रतिदिन फूल लेकर जाती थी। किस दुराशा से, नहीं जानती। निराश होकर लौट आने के समय रोज़ सोचती थी, क्यों जाती हूँ ? रोज़ सोचती थी, अब नहीं जाऊँगी। रोज़ ही वह कल्पना व्यर्थ होती थी। रोज़ फिर जाती थी। कोई जैसे केश पकड़कर खींच ले जाता था। फिर निराश होकर लौट आती थी। फिर प्रतिज्ञा करती थी, नहीं जाऊँगी, फिर जाती थी। इसी तरह दिन कटने लगे।

मन-ही-मन आलोचना करती थी, क्यों जाऊँगी ? सुना है, स्त्री पुरुष को रूप से मुग्ध होकर प्यार करती है। मैं अन्धी हूँ, किसका रूप मैंने देखा है ? फिर क्यों जाती हूँ ? बातें सुनने के लिए ? क्या किसी ने सुना है कि कोई स्त्री केवल शब्द सुनकर मुग्ध हुई है ? मैं क्या वैसी ही हुई हूँ ? यह भी क्या सम्भव है ? ऐसा ही है तो बाजा सुनने के लिए वादक के यहाँ क्यों नहीं जाती ? सितार, सारङ्गी, इसराज, बेला से बढ़ कर क्या शचीन्द्र का गला है ? यह झूठ है।

तो क्या वही स्पर्श है ? मैं जो कुसुम-राशि दिन-रात लेकर रहती हूँ, कभी बिछाकर सोती हूँ, कभी हृदय से लगाती हूँ, इससे भी क्या उसका स्पर्श अधिक कोमल है ? ऐसा तो नहीं। फिर क्या है ? इस अन्धी को कौन समझायेगा कि क्या है ?

तुम लोग समझते नहीं, समझाओगे क्या ? तुम्हारे आँखें हैं, रूप पहचानते हो, रूप समझते हो। मैं समझती हूँ, रूप द्रष्टा का केवल मानसिक विकार है। रूप रूपवान् में नहीं, रूप दर्शक के मन में है, नहीं तो किसी एक को सब लोग बराबर रूपवान् क्यों नहीं देखते ? एक में सब लोग समभाव से आसक्त क्यों नहीं होते ? उसी तरह शब्द भी है। रूप दर्शकों के एक ख़ास मन का सुख है, शब्द भी श्रोताओं के एक ख़ास मन का सुख है। स्पर्श भी छूनेवालों के एक ख़ास मन का सुख है। यदि मेरे रूपसुख की राह बन्द हो तो शब्द, स्पर्श, गन्ध क्यों रूप-सुख की तरह मन में सर्वमय नहीं होंगे ?

सूखी भूमि पर पानी बरसने पर वह क्यों उपजाऊ नहीं होगी ? सूखी लकड़ी में आग लगने पर वह क्यों नहीं जलेगी ? रूप से हो, शब्द से हो, स्पर्श से हो, शून्य स्त्री-हृदय में अच्छे पुरुष का संस्पर्श होने पर क्यों प्रेम नहीं पैदा होगा ? देखो, अँधेरे में भी फूल खिलता है, बादल की आड़ रहने पर भी चाँद आकाश में विहार करता है, निर्जन वन में भी कोयल कूकती है, जिस सागर-गर्भ में मनुष्य कभी नहीं जायगा, वहाँ भी रत्न प्रभासित होते हैं। अन्धी के हृदय में भी प्रेम पैदा होता है। मेरी आँखें बन्द हैं, इसलिए हृदय क्यों प्रस्फुटित नहीं होगा ?

होगा क्यों नहीं, लेकिन वह मुझे सिर्फ़ जलाने के लिए होगा। गूँगे का कवित्व सिर्फ़ उसे जलाने के लिए है। बहरे को अगर सङ्गीत का अनुराग हो तो वह केवल उसे जलाने के लिए है। अपना गाना वह आप नहीं सुन पाता। मेरे हृदय का प्रणय-सञ्चार उसी तरह जलाने के लिए है। दूसरे का रूप क्या देखूँगी, मैं कभी अपना रूप न देख पाई ! रूप ! रूप ! मेरा क्या रूप है। इस भूमण्डल में रजनी नाम की एक छोटी-सी बूँद कैसी देख पड़ती है ? मुझे देखने पर क्या कभी किसी की फिर से देखने की इच्छा नहीं हुई ? ऐसा नीचाशय क्षुद्र क्यों कोई संसार में नहीं जो मुझे सुन्दर देखे ? आँखें न रहने पर नारी सुन्दरी नहीं होती, मेरे आँखें नहीं, परन्तु फिर कारीगर पत्थर काटकर बिना आँखों की मूर्ति क्यों गढ़ते हैं ? मैं क्या सिर्फ़ वही पत्थर की मूर्ति हूँ ? तो विधाता ने इस पत्थर में सुख-दुख-समाकुल प्रणय-लालसा-परवश यह हृदय क्यों रक्खा ? पत्थर का दुःख पाया है, पत्थर का सुख मैंने क्यों नहीं पाया ? इस संसार में यह तारतम्य क्यों ? अनन्त दुष्कृत्य करनेवाले भी आँखों से देखते हैं, मैंने पूर्व जन्म में कौन-सा पाप किया था कि अन्धी हुई ? इस संसार में विधाता नहीं, विधान नहीं, पाप और पुण्य का दण्ड और पुरस्कार नहीं; मैं मरूँगी।

मेरे इस जीवन में बहुत-से साल बीते हैं, बहुत-से साल आ भी

सकते हैं। साल-साल बहुत-से दिन, दिन-दिन, बहुत-से दण्ड, दण्ड-दण्ड बहुत-से मुहूर्त्त होंगे, इनमें क्या एक मुहूर्त्त के लिए, एक पल के लिए मेरी आँखें नहीं खुलेंगी ? एक मुहूर्त्त के लिए आँखें खोल सकने पर देख लूँ, यह शब्द-स्पर्शमय सारा-संसार क्या है—मैं क्या हूँ—शचीन्द्र क्या है ?

चौथा परिच्छेद

मैं रोज़ फूल ले जाया करती थी, छोटे बाबू की बात-चीत की आवाज़ अक्सर नहीं मिलती थी। परन्तु कदाचित् दो-एक दिन मिलती थी। उस आनन्द की बात नहीं कह सकती। मुझे मालूम पड़ता था, वर्षा के जल-भरे बादल जब गरजते हुए बरसते हैं, तब बादलों को शायद वैसा ही आनन्द होता है। मेरी भी वैसी ही पुकार करने की इच्छा होती थी। मैं रोज़ सोचती थी, मैं छोटे बाबू को कुछ चुने फूलों का गुलदस्ता बाँधकर दे आऊँ। परन्तु ऐसा एक दिन भी नहीं कर सकी। एक तो लाज लगती थी, फिर मन में सोचती थी, फूल देने पर वे दाम देना चाहेंगे, कैसे फिर मैं नहीं लूँगी ? मन का क्षोभ मन में रखकर, घर लौटकर, फूल लेकर छोटे बाबू को ही गढ़ती थी। क्या गढ़ती थी, नहीं जानती; कभी देखा नहीं।

इधर मेरे आने-जाने में एक अचिन्तनीय फल फल रहा था, मैं उसका कुछ भी नहीं जानती थी। माता-पिता की बातचीत से यह पहले पहल जान पाई। एक दिन सन्ध्या के बाद मैं माला गूँथती गूँथती सो गई थी। नहीं मालूम किस आवाज़ से आँख खुल गई। जगने पर कानों में माता-पिता की बात-चीत की आवाज़ गई। जान पड़ता है, दिया गुल हो गया था; क्योंकि माता-पिता को मेरा जग जाना मालूम हो गया ऐसा नहीं मालूम दिया। मैंने भी अपना नाम सुनकर

कोई आहट नहीं दी। सुना, मा पूछ रही है, "तो क्या एक तरह निश्चित ही हो गया है ?"

पिता ने जवाब दिया, "हाँ, निश्चित नहीं तो और क्या ? ऐसे बड़े आदमी ज़बान दें तो इसमें भी कोई शक की जगह है ? और मेरी लड़की में दोष यही है कि वह अन्धी है, नहीं तो ऐसी लड़की आदमी तपस्या करके भी नहीं पाते।"

मा—तो इतने दिन बाद क्यों करेंगे ?

पिता—तुम समझ नहीं सकतीं कि वे हमारी तरह रुपये के कङ्गाल नहीं, हज़ार-दो हज़ार रुपये का ख़र्च वे ख़र्च में ही नहीं गिनते। जिस दिन रजनी के सामने रामसदय बाबू की स्त्री ने विवाह की बात पहले-पहल चलाई, उसी दिन से रजनी उनके यहाँ, रोज़ आने जाने लगी। उन्होंने लड़के से पूछा था, रुपये से क्या अन्धी का ब्याह हो सकता है ? इससे लड़की के मन में आशा-भरोसा हो सकता है कि शायद ये दयावती होकर रुपया ख़र्च करके मेरा विवाह कर देंगी। उस दिन से रजनी रोज़ जाती-आती है। उसी दिन से रोज़ का आना-जाना देखकर लवङ्ग समझीं कि लड़की विवाह के लिए बहुत व्याकुल हुई है। होगी भी क्यों नहीं, उम्र तो हो गई है। उसी पर छोटे बाबू ने रुपये देकर हरनाथ बसु को राज़ी किया है। गोपाल भी राज़ी है।

हरनाथ बसु रामसदय बाबू के घर का कारिन्दा है। गोपाल उसका लड़का है। गोपाल की बात मैं कुछ कुछ जानता था। उसकी उम्र तीस की है, एक स्त्री है, लेकिन लड़का नहीं हुआ। गृह-धर्म के लिए उसके एक पत्नी है, सन्तान के लिए अन्धी स्त्री में उसे आपत्ति नहीं। ख़ास बात यह है कि लवङ्ग उसे रुपये देंगी। मा-बाप की बातचीत से मैं समझी, गोपाल के साथ मेरा विवाह निश्चित हुआ है। रुपये के लोभ से वह बीस साल की लड़की से भी विवाह करने को तैयार है। रुपये से जाति ख़रीदेगा। मा-बाप ने सोचा, इस जन्म के

लिए अन्धी कन्या ने उद्धार पाया। वे प्रसन्न होने लगे। मेरे सिर आकाश टूट पड़ा।

इसके दूसरे दिन निश्चय किया, मैं अब लवङ्ग के पास और नहीं जाऊँगी, मन-ही-मन उसे सैकड़ों बार कलमुँहीं कहकर गाली देने लगी। लाज से मर जाने की इच्छा होने लगी। ग़ुस्से से लवङ्ग को मारने को जी करने लगा। दुःख से रुलाई आने लगी। मैंने लवङ्ग का क्या बिगाड़ा है जो वह मुझ पर इतना अत्याचार करने को तुल गई? सोचा, धनी होने के कारण अत्याचार करके ही वह अगर सुखी हो रही थी तो क्या जन्मान्ध दुःखिनी के सिवा और अत्याचार करने का पात्र उसे नहीं मिल रहा था? सोचा, नहीं, एक दिन और जाऊँगी, उसे इसी तरह सुना आऊँगी, अब और फूल नहीं बेचूँगी, और उसके रुपये नहीं लूँगी, मा अगर उसे फूल देकर दाम ले आयें, तो उसके रुपये का लिया अन्न नहीं खाऊँगी, बिना खाये मरना हो तो वह भी अच्छा। सोचा, कहूँगी, धनी होने पर क्या परपीड़न ही किया जाता है? कहूँगी, मैं अन्धी हूँ अन्धी हूँ इसलिए दया नहीं होती? कहूँगी, पृथ्वी में जिसके कोई सुख नहीं, उसे बिना अपराध के सताकर तुम्हें क्या सुख होगा? जितना ही सोचती थी कि यह यह कहूँगी, उतना ही अपने आँसुओं से आप बहती थी। मन में यह भय होने लगा, कहने के वक़्त बातें कहीं भूल न जाऊँ।

यथासमय रामसदय बाबू के मकान चली। सोचा था, फूल नहीं लूँगी, परन्तु ख़ाली हाथ जाते हुए लाज लगने लगी, क्या कहकर जाकर बैठूँगी? पहले की तरह कुछ फूल लिये। परन्तु आज मा से छिपकर गई।

फूल दिये। बातें सुनाऊँगी, सोचकर लवङ्ग के पास बैठी। क्या कहकर प्रसङ्ग उठाऊँ? रामराम! क्या कहकर श्रीगणेश करूँ? जड़ की बात कौन-सी है? जैसे चारों ओर आग लगी है, पहले किस तरफ़ बुझाऊँ? कुछ कहते नहीं बना। बात उठा ही नहीं सकी। रुलाई

आने लगी। सौभाग्य से लवङ्ग ने आप प्रसङ्ग उठाया, "अन्धी, तेरा ब्याह होगा।"

मैं जल गई। कहा, "ख़ाक होगा।"

लवङ्ग ने कहा, "क्यों, छोटे बाबू ब्याह करायेंगे—होगा क्यों नहीं?"

और जल गई, कहा, "क्यों, मैंने तुम लोगों के पास कौन-सा क़सूर किया है?"

लवङ्ग को भी ग़ुस्सा आया। कहा, "अरे मरी! तेरी ब्याह करने की इच्छा ही नहीं क्या?"

मैंने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

लवङ्ग को और भी क्रोध आया, कहा, "पापिन कहीं की। ब्याह क्यों नहीं करेगी?

मैंने कहा, "इच्छा।"

लवङ्ग के मन में, जान पड़ता है, सन्देह हुआ—मैं बिगड़ी हूँ, नहीं तो ब्याह में राज़ी क्यों नहीं? उसने काफ़ी नाराज़ होकर कहा, "अरी मुई! निकल कहती हूँ, नहीं तो झाड़ू मारकर बिदा करूँगी।"

मैं उठी—मेरी दोनों अन्धी आँखों से आँसू टपक रहे थे। लेकिन लवङ्ग से मैंने मुँह छिपा लिया। लौटी। घर जा रही थी, ज़ीने के पास आकर असमञ्जस में थी कि बातें तो कुछ भी नहीं सुना सकी; एकाएक किसी के पैरों की आहट सुन पड़ी। अन्धे की सुनने की ताक़त बहुत काफ़ी बढ़ी चढ़ी होती है। मैं दो एक बार पैरों की वह आहट सुनकर ही पहचान गई थी, किसके पैरों की आहट है। मैं ज़ीने पर बैठ गई। छोटे बाबू मेरे पास आये, मुझे देखकर खड़े हो गये। जान पड़ता है, मेरी आँखों के आँसू उन्होंने देख लिये, पूछा, "कौन, रजनी?"

सब कुछ भूल गई! ग़ुस्सा भूल गई, अपमान भूल गई, दुःख भूल गई, कानों में बजने लगा, "कौन, रजनी!" मैंने जवाब नहीं दिया। मन में आया, और दो एक बार पूछें, मैं सुनकर कान ठण्ढे करूँ।

छोटे बाबू ने पूछा, "रजनी, रो क्यों रही हो ?"

मेरा अन्तर आनन्द से भरने लगा। आँसू और ज़ोर मारने लगे मैं बोली नहीं, और भी पूछें। मन में आया, मैं कितनी भाग्यवती हूँ !- विधाता ने मुझे अन्धी किया है, परन्तु बहरी नहीं किया।

उन्होंने फिर पूछा, "क्यों रो रही हो ? किसी ने कुछ कहा है ?

इस दफ़ा मैंने जवाब दिया। उनके साथ बातचीत का सुख अग ज़िन्दगी में एक दफ़ा मिल रहा है तो क्यों छोड़ूँ ? मैंने कहा, "छोटी ने तिरस्कार किया है।"

छोटे बाबू हँसे। कहा, छोटी मा की बात न लो, उनका मुँह वैर ही है, परन्तु मन से नाराज़ नहीं होतीं। तुम मेरे साथ आओ। अभी फिर अच्छी बातें करने लगेंगी।"

उनके साथ क्यों नहीं जाऊँगी ? उनके बुलाने पर क्या फिर गुस रहता है ? मैं उठी। उनके साथ चली। वे ज़ीने पर चढ़ने लगे। पीछे पीछे चढ़ रही थी। उन्होंने पूछा, "तुम देख नहीं पाती। ज़ीने कैसे चढ़ती हो ? न चढ़ सको तो मैं हाथ पकड़कर ले चलता हूँ।"

मेरी देह काँप उठी। सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया। उन्होंने मे हाथ पकड़ा। पकड़ें,—लोग निन्दा करनी हो करें,—मेरा नार जन्म सार्थक हो, मैं दूसरे की मदद के बिना कलकत्ते की गली-गली घू सकती हूँ, लेकिन छोटे बाबू को मना नहीं कर सकी। छोटे बाबू--क कहूँ ?—किस तरह कहूँ—सही शब्द नहीं मिल रहा—छोटे बाबू मेरा हाथ पकड़ा।

जैसे एक सुबह के खिले पद्म ने अपने दलों से मेरी बाँह पकड़ ली— जैसे गुलाब की माला गूँथकर किसी ने मेरी बाँह में बाँध दी। मु और कुछ याद नहीं। शायद उसी समय इच्छा हुई थी--अब क्यों नहीं मरती ? शायद उस समय गलकर जल हो जाने की इच्छ हुई थी—शायद इच्छा हुई थी, शचीन्द्र और मैं दो फूल बनक इसी तरह एक साथ किसी पेड़ के एक गुच्छे में झूलते रहें

और क्या ख़याल आया था, याद नहीं। जब ज़ीने के ऊपर पहुँचकर छोटे बाबू ने हाथ छोड़ दिया तब मैंने लम्बी साँस छोड़ी, यह संसार फिर मुझे याद आया; इसी के साथ याद आया, "यह क्या किया तुमने, प्राणेश्वर ! बिना समझे हुए क्या किया ? तुमने मेरा पाणि-ग्रहण किया है। अब तुम मुझे ग्रहण करो या न करो—तुम मेरे पति हो, मैं तुम्हारी पत्नी। इस जन्म में अन्धी फूलवाली का दूसरा कोई पति नहीं होगा।"

उस समय क्या किसी मुँहजले की निगाह पड़ी ? जान ऐसा ही पड़ता है।

पाँचवाँ परिच्छेद

छोटे बाबू ने छोटी मा के पास जाकर पूछा, "रजनी को तुमने क्या कहा है, मा, वह रो रही है ?" मेरी आँखों में आँसू देखकर छोटी मा अप्रतिभ हुई। मुझसे भली-भली बातें करके पास बैठाला, उम्र में बड़े सौतेले लड़के से कुल बातें खोलकर नहीं कह सकीं। छोटी मा को प्रसन्न देखकर छोटे बाबू अपने काम से बड़ी मा के पास चले गये। मैं भी मकान लौट आई।

इधर गोपाल बाबू के साथ मेरे विवाह का उद्योग होने लगा। दिन निश्चित हुआ। मैं क्या करूँ ? फूल गूँथना बन्द करके, किस तरह यह विवाह रोकूँ, यही विचार करने लगी। विवाह में माता को आनन्द, पिता को उत्साह था, लवङ्गलता का प्रयत्न और छोटे बाबू की घटकता। मैं अकेली, अन्धी, किस तरह इसकी रोक-थाम करूँगी ? कोई उपाय देख नहीं पाई। माला गूँथना बन्द हुआ। माता-पिता ने सोचा, विवाह के आनन्द से विह्वल होकर मैंने माला गूँथना बन्द किया है।

ईश्वर ने मुझे एक मदद ला दी। कह चुकी हूँ, गोपाल बसु की एक शादी हो चुकी थी। उनकी पत्नी का नाम चम्पा था, पिता ने रक्खा था—चम्पकलता। सिर्फ़ चम्पा इस विवाह में असम्मत थी। चम्पा कुछ मज़बूत दिल की स्त्री थी। जिससे घर में सौत न आये, उसकी कोई कोशिश उठा नहीं रक्खी।

हीरालाल नाम का चम्पा का एक भाई था—चम्पा से डेढ़ साल का छोटा। हीरालाल शराब पीता था, वह भी थोड़ी नहीं। सुना है, गाँजे की भी दम लगाता था। उसके पिता ने उसे पढ़ना-लिखना नहीं सिखाया। किसी तरह वह दस्तख़त कर लेता था। फिर भी रामसदय बाबू ने कहीं उसे क्लर्की का काम दिला दिया था। मतवालेपन के कारण उसकी नौकरी छूट गई थी। हरनाथ बसु ने उसकी ख़ुशामद से ख़ुश होकर लाभ की आशा से उसे दूकान करा दी। दूकान में लाभ होना दूर रहे, और बाक़ी पड़ गया। दूकान उठ गई। इसके बाद किसी गाँव में बारह रुपये वेतन पर हीरालाल मास्टर हो गया। उस गाँव में शराब नहीं मिलती थी। इसलिए हीरालाल वहाँ से भाग आया। इसके बाद उसने एक अख़बार निकाला। कुछ दिनों तक उसमें बड़ा फ़ायदा रहा। बड़ी तारीफ़ रही। परन्तु अश्लीलता का दोष लगाकर पुलिस ने खींचतान शुरू की। डर से हीरालाल अख़बार छोड़ कर लापता हुआ। कुछ दिन बाद हीरालाल फिर दिखलाई पड़ा, छोटे बाबू की मुसाहबी करने की कोशिश करने लगा। परन्तु छोटे बाबू के पास शराब की गुञ्जाइश नहीं देखकर अपने आप हट गया। कोई उपाय न रहा तो नाटक लिखने लगा। नाटक एक भी नहीं बिका। लेकिन रायल्टी पर छापेख़ाने का रुपया नहीं चुकाया जाता, इसलिए इस दफ़ा रक्षा हो गई। इस समय, इस संसार में कहीं किनारा न देखकर, हीरालाल चम्पा दीदी का आँचल पकड़ कर बैठा रहा।

चम्पा ने हीरालाल को अपने काम के उद्धार के लिए लगाया।

हीरालाल ने बहन से सविशेष सुनकर पूछा, "रुपये की बात सच तो है ? जो भी उस अन्धी से ब्याह करेगा, उसे ही रुपया मिलेगा ?"

चम्पा ने इस विषय का सन्देह दूर कर दिया। हीरालाल को रुपये की बड़ी ज़रूरत थी। वह उसी समय मेरे पिता जी के यहाँ आया। तब पिता जी मकान में थे, मैं नहीं थी। मैं पड़ोस के दूसरे मकान में थी। एक दूसरा न पहचाना आदमी पिता से बातचीत कर रहा है, गले की आवाज़ सुनकर कान लगाकर मैं बातचीत सुनने लगी। हीरालाल का कितना कर्कश और बिगड़ा स्वर था !

हीरालाल कह रहा था, "सौत के रहते क्यों ब्याह कर रहे हो ?"

पिता ने दुःखित होकर कहा, "क्या करूँ ! बिना किये ब्याह भी तो नहीं हो रहा, इतने दिनों तक नहीं हुआ !"

हीरालाल—क्यों, क्यों, तुम्हारी लड़की की शादी की चि क्या है ?

पिता ने कहा, "मैं ग़रीब हूँ। फूल बेचकर गुज़र करता हूँ, मेरी लड़की से कौन ब्याह करेगा ? इस पर मेरी लड़की अन्धी है और उम्र भी काफ़ी हो चुकी है।"

हीरा—क्यों, वर की कौन कमी है ? मुझसे कहने पर मैं ही ब्याह कर लूँगा। आज-कल तो बड़ी उम्र की लड़की ही लोग चाहते हैं। मैं जब "तुश्च भिश्चुशात" पत्रिका का एडीटर था, तब मैंने, लड़की बड़ी होने पर ब्याह होना चाहिए, इस पर कितने आर्टिकल लिखे हैं। पढ़ने पर आसमान में बादल कड़क उठे थे। [illegible] ! राम-राम ! लड़की को बड़ा करके ही ब्याहना चाहिए। आओ ! मुझे देश की उन्नति का एकज़ाम्पल सेट करने दो। मैं ही इस लड़की से ब्याह रूँगा।

तब हीरालाल के चरित्र की बात हम लोगों ने विस्तार से नहीं सुनी थी। बाद को सुनी। पिता इधर-उधर करने लगे। इतना बड़ा पण्डित दामाद बे-हाथ हो रहा है, सोचकर बाद को कुछ दुखी हुए। अन्त में

कहा, "अब बात पक्की हो चुकी है, अब कोई टाल-मटोल नहीं चल सकता। ख़ास तौर से इस विवाह के करनेवाले शचीन्द्र बाबू हैं। वही लोग ब्याह कर रहे हैं। वे जो कुछ करेंगे, वही होगा। गोपाल बाबू से विवाह की बातचीत उन्होंने पक्की की है।"

हीरा—उन लोगों का मतलब तुम क्या समझोगे? बड़े आदमी के चरित्र का छोर मिलना दुश्वार है। उन पर बहुत विश्वास न करना।

यह कह कर हीरालाल ने चुपचाप कुछ कहा। यह मैं नहीं सुन पाई। पिता ने कहा, "यह क्या? नहीं, मेरी अन्धी लड़की।"

हीरालाल की उस समय पल्ली नहीं लगी। वह घर के इधर-उधर देखता रहा। चारों तरफ़ देखकर कहा, "तुम्हारे घर शराब नहीं, क्यों?" पिता ताज्जुब में आ गये। पूछा, "शराब? किसलिए रक्खूँगा?"

शराब नहीं जान कर, विज्ञ की तरह हीरालाल ने कहा, "सावधान कर देने के लिए कह रहा था। आज-कल भले आदमियों से रिश्तेदारी करने के लिए चलने पर इन चीज़ों का रहना अच्छा नहीं मालूम देता।"

बात पिता को बहुत अच्छी नहीं लगी, वे चुप्पी साध गये। विवाह में या शराब में किसी तरफ़ भी देश की उन्नति का एक्ज़ाम्पल सेट न कर सकने के कारण हीरालाल उतरे मन से विदा हुआ।

छठा परिच्छेद

विवाह का दिन बहुत निकट आया। सिर्फ़ एक दिन की देर और है। रास्ता नहीं, छुटकारा नहीं। चारों ओर से उच्छ्वसित जलराशि गरजती हुई आ रही है—ज़रूर डूबूँगी।

तब लाज छोड़कर मा के पैरों पछाड़ खाकर गिरी और फूट-फूटकर रोने लगी। हाथ जोड़कर कहा, "मेरा ब्याह न करो, मैं क्वारी ही रहूँगी।"

मा ने ताज्जुब में आकर पूछा, "क्यों, क्यों ?" मैं इसका जवाब नहीं दे सकी। सिर्फ़ हाथ जोड़ती रही। सिर्फ़ रोती रही। मा नाराज़ हुई, ग़ुस्से में आ गई, गालियाँ देने लगीं। अन्त में पिता जी से कह दिया। पिता भी गालियाँ देते हुए मारने दौड़े। फिर कुछ कह नहीं सकी।

उपाय नहीं, निष्कृति नहीं, मैं डूबी।

उस दिन दिन ढले मैं अकेली घर में थी, पिता विवाह का ख़र्च इकट्ठा करने के लिए गये थे, मा चीज़-वस्तु ख़रीदने निकली थीं। यह सब जब होता था, मैं तब दरवाज़ा बन्द करके रहती थी या वामाचरण मेरे पास बैठा रहता था। वामाचरण एक दिन बैठा था। कोई एक आदमी दरवाज़ा ढकेल कर घर में पैठा। पैरों की आहट पहचानी नहीं थी। मैंने पूछा, "कौन हो जी ?"

उत्तर "तुम्हारा काल।"

बात सही थी, परन्तु आवाज़ औरत की, मैं डरी नहीं। हँस कर कहा, मेरे क्या काल है ? तो इतने दिनों तक कहाँ रहे ?"

औरत का ग़ुस्सा नहीं बुझा। "अब समझेगी। ब्याह की बड़ी साध है ! मुहझौंसी—अभागिन !" आदि से गालियों का प्रस्तार शुरू हुआ। गालियाँ समाप्त होने पर उस मधुरभाषिणी ने कहा "हाँ देख अन्धी, अगर मेरे पति से तेरी शादी हुई तो जिस दिन तू सोने जायगी, उस दिन तुझे ज़हर खिलाकर मारूँगी।"

समझी, चम्पा ख़ुद हैं। आदरपूर्वक बैठने के लिए कहा। कहा—"सुनो, तुमसे कुछ बातचीत है।"

इतनी गालियों के उत्तर में सादर सम्भाषण सुनकर चम्पा कुछ शीतल होकर बैठी।

मैंने कहा, 'सुनो, इस ब्याह में जैसे तुम राज़ी नहीं, वैसे ही मैं भी नहीं। मेरा यह ब्याह जिससे न हो मैं वही करने के लिए तैयार हूँ। किस तरह ब्याह रुकेगा, उसका उपाय बता सकती हो ?"

चम्पा चकित हो गई। कहा, "तुम अपने मा-बाप से क्यों नहीं कहती ?"

मैंने कहा, "हज़ार दफ़े कहा है। कुछ भी नहीं हुआ।"

चम्पा—बाबुओं के मकान जाकर उनके हाथ-पैर क्यों नहीं पकड़ती ?"

मैं—इससे भी कुछ नहीं हुआ।

चम्पा कुछ सोचकर बोली, 'तो एक काम करेगी ?"

मैं—क्या ?

चम्पा—दो दिन छिपी रहेगी ?

मैं—कहाँ छिपूँगी ? मेरे लिए कहाँ जगह है ?

चम्पा ने फिर कुछ देर सोचा। पूछा, "मेरे पिता के वहाँ जाकर रहेगी ?

मैंने सोचा, "बुरा क्या है, और तो उद्धार का रास्ता नहीं नज़र आ रहा।" कहा, मैं अन्धी हूँ ! नई जगह मुझे कौन रास्ता बताकर ले जायगा ? वे भी मुझे जगह क्यों देंगे ?

चम्पा मुझे भेट देनेवाली बुरी वृत्ति का रूप बनकर आई थी; उसने कहा, "इसके लिए तुझे दिमाग़ नहीं लड़ाना होगा। वह कुल इन्तज़ाम मैं कर दूँगी। मैं उन्हें कहला भेजूँगी। तू जाना चाहे तो कह।"

डूबती हुई के सामने की लकड़ी की तरह यह प्रवृत्ति मेरी आँखों के सामने एकमात्र रक्षा का उपाय मालूम दी। मैं सम्मत हुई।

चम्पा ने कहा, "अच्छा, तो तैयार रहना। रात को सब आदमी सो जायँगे तब मैं आकर दरवाज़े पर उँगली की खटक दूँगी, बाहर निकल आना।"

मैं सम्मत हुई।

आधी रात को दरवाज़े में खट-खट की धीमी आवाज़ हुई। मैं जग रही थी। सिर्फ़ दूसरी धोती लेकर मैं दरवाज़ा खोलकर बाहर निकली। समझी, चम्पा खड़ी है। उसके साथ साथ चली। एक दफ़ा नहीं

सोचा, एक दफ़ा नहीं समझी कि कौन-सा पाप कर रही हूँ। माता-पिता के लिए मन व्याकुल हुआ सही, परन्तु तब मन में विश्वास था कि थोड़े दिनों के लिए जा रही हूँ। विवाह की बात टल जाने पर फिर आऊँगी।

मैं चम्पा के घर—अपनी ससुराल ?—पहुँची तो चम्पा ने उसी वक्त आदमी साथ देकर मुझे बिदा कर दिया। उसके पति को मालूम न हो जाय, इस डर से बड़ी जल्दबाज़ी की। जो आदमी साथ दिया गया उसके साथ जाने में मुझे बड़ा एतराज़ था। परन्तु चम्पा ने ऐसी जल्दबाज़ी की कि मेरा एतराज़ बह गया। समझ लो, किसे उसने मेरे साथ किया!

हीरालाल को।

हीरालाल के बुरे चरित्र की बात तब मैं कुछ जानती नहीं थी। इसलिए बहुत एतराज़ नहीं किया। वह जवान, मैं युवती—उसके साथ कैसे अकेली जाऊँ? यह आपत्ति थी। परन्तु तब मेरी बात कौन सुनता था? मैं अन्धी, राह न जानी हुई। रात को गई थी, इसलिए रास्ते में जो शब्दों से हुए चिह्न पहचानती हुई चलती हूँ, वे कुछ सुनने को नहीं मिले। इसलिए बिना सवारी—बिना सहाय के मकान नहीं लौट सकी। मकान लौट जाने पर भी वही पाप विवाह था! लाचार हीरालाल के साथ जाना पड़ा। तब मन में आया, अन्धी का मददगार दूसरा कोई हो या न हो, सिर के ऊपर देवता हैं। वे कभी पीड़ित को लवङ्गलता की जैसी पीड़ा नहीं पहुँचायेंगे। उनके दया है, शक्ति है, अवश्य दया करके वे मेरी रक्षा करेंगे, नहीं तो दया किसके लिए है?

तब नहीं मालूम था कि ईश का नियम विचित्र है, आदमी की बुद्धि के परे है। हम जिसे दया कहते हैं, ईश्वर के अनन्त ज्ञान के पास वह दया नहीं। हम जिसे परपीड़न कहते हैं, ईश्वर के अनन्त ज्ञान के पास वह पीड़न नहीं। तब मालूम नहीं था कि इस संसार का

अनन्त चक्र दया और दाक्षिण्य से रहित है, वह चक्र नियमित पथ से कुछ भी न बिगड़ी देख पर दिनरात चल रहा है, उसके प्रबल वेग के रास्ते पर जो आयेगा—अन्धा हो, लँगड़ा हो, आर्त्त हो—वही पिस कर मरेगा। मैं अन्धी हूँ, निःसहाय हूँ, पर अनन्त संसार-चक्र-पथ छोड़कर कैसे चलूँगी?

हीरालाल के साथ प्रशस्त राजपथ पर निकली। उसके पैरों की आहट के पीछे पीछे चली। कहीं की घड़ी में एक बजा। रास्ते पर कोई नहीं। कहीं शब्द नहीं। सिर्फ़ दो-एक चलती गाड़ियों की आवाज़। दो-एक सदा से हृतबुद्धि कामिनियों की असम्बद्ध गीतध्वनि। मैंने हीरालाल से एकाएक पूछा—"हीरालाल बाबू, आपके बदन में ताक़त कैसी है?"

हीरालाल कुछ ताज्जुब में आया, कहा, "क्यों?"

मैंने कहा—"पूछती हूँ।"

हीरालाल ने कहा—"हाँ, कम नहीं।"

मैं—तुम्हारे हाथ में किसकी लाठी है?

हीरालाल—ताड़ की।

मैं—तोड़ सकते हो?

हीरा—क्या मजाल!

मैं—अच्छा, मुझे तो दो।

हीरालाल ने मुझे लाठी दी। मैंने उसे तोड़कर दो टुकड़े कर दिये। हीरालाल मेरा बल देखकर आश्चर्य में पड़ा। मैंने आधा हिस्सा उसे देकर आधा अपने पास रक्खा। उसकी लाठी तोड़ दी, देखकर हीरालाल नाराज़ हो गया। मैंने कहा, "मैं अब निश्चिन्त हो गई। नाराज़ न होना। तुमने मेरी ताक़त देख ली। मेरे हाथ में यह आधी लाठी देखते हो। तुम्हारी इच्छा रहने पर भी तुम मुझ पर कोई अत्याचार करने की हिम्मत नहीं करोगे।"

हीरालाल चुप रहा।

सातवाँ परिच्छेद

जगन्नाथघाट पहुँचकर हीरालाल ने नाव की। रात के समय दखिनाव में पाल लगाया गया। उसने कहा, उसके बाप का मकान हुगली में है। मैं यह पूछने को भूल गई थी।

रास्ते में हीरालाल ने कहा, "गोपाल के साथ तो तुम्हारा विवाह हुआ नहीं, मेरे साथ विवाह करो।"

मैंने कहा, "नहीं।"

हीरालाल ने विचार करना शुरू किया। उसका प्रयत्न यह था कि वह साबित करे कि उसकी तरह का सत्पात्र पृथ्वी में दुर्लभ है, मेरी तरह की कुपात्री भी पृथ्वी में दूसरी नहीं। मैंने दोनों बातें मञ्जूर कीं। फिर भी कहा कि, नहीं, तुमसे ब्याह नहीं करूँगी।

तब हीरालाल बहुत क्रुद्ध हुआ। कहा, "अन्धी को कौन ब्याहना चाहेगा?" यह कह कर चुप हो गया। हम दोनों चुप रहे। इसी तरह रात पार होती रही।

इसके बाद, रात ख़त्म होते होते, हीरालाल ने एकाएक माझियों से कहा, "यहीं लगा दो।" माझियों ने नाव लगा दी। नाव के तले मिट्टी के छू जाने की आवाज़ मालूम हुई। हीरालाल ने मुझसे कहा, "उतरो—हम पहुँच गये।" मेरा हाथ पकड़ कर उसने उतारा। मैं किनारे खड़ी हुई।

इसके बाद आवाज़ सुनी, जैसे हीरालाल फिर नाव पर चढ़ा। माझियों से बोला, "चलो, खोल दो नाव।" मैंने कहा, "यह क्या? मुझे उतार कर, नाव खोल दो, क्यों?"

हीरालाल ने कहा, "अपना रास्ता आप देख लो।" माझी नाव खोलने लगे, डाँड़ों की आवाज़ सुनी। तब मैंने व्याकुल होकर कहा, "तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मैं अन्धी हूँ; अगर निहायत मुझे छोड़ जाओगे,

तो किसी के मकान तक मुझे पहुँचा कर जाओ। मैं यहाँ कभी आई नहीं, यहाँ का रास्ता किस तरह पहचानूँगी ?"

हीरालाल ने कहा, "मुझसे ब्याह करने को राज़ी हो ?"

मुझे रुलाई आ गई। कुछ देर तक रोई, ग़ुस्से में हीरालाल से बोली, "तुम जाओ। तुमसे कोई उपकार नहीं लेना चाहिए। रात बीत जाने पर तुमसे बढ़कर सैकड़ों दयालुओं के दर्शन होंगे। वे अन्धी पर तुमसे ज़्यादा दया करेंगे।"

हीरा०—दर्शन हों तब न ? यह तो रेती है। चारों तरफ़ पानी है। मुझसे ब्याह करोगी ?

हीरालाल की नाव तब कुछ बाहर चली गई थी। श्रवणशक्ति मेरी ज़िन्दगी का सहारा है, श्रवण ही मेरी आँखों का काम करते हैं। किसी के बोलने पर, कितनी दूर किस तरफ़ बोल रहा है, यह समझ सकती हूँ। हीरालाल किस तरफ़ कितनी दूर रह कर बोला, यह मन ही मन समझ कर पानी में उतर कर मैं उस तरफ़ बढ़ी। इच्छा थी, नाव पकड़ूँगी। गले तक पानी में उतर गई। लेकिन नाव नहीं मिली। नाव और भी गहरे में थी। नाव पकड़ने को बढ़ने पर डूबकर मरूँगी।

ताड़ की लाठी तब भी हाथ में थी। फिर निश्चय करके, आवाज़ पकड़ती हुई समझी, हीरालाल इस तरफ़ इतनी दूर से बातें कर रहा है। पीछे हटकर कमर भर पानी में आकर, शब्द के स्थान का अनुभव करके, वह ताड़वाली लाठी ज़ोर से फेंकी।

चीख़कर हीरालाल नाव पर गिर गया। "ख़ून हुआ—ख़ून हुआ" कहकर माझियों ने नाव खोल दी। वास्तव में उस पापी को लाठी नहीं लगी थी। उसी वक़्त उसकी मधुर ध्वनि सुन पड़ी। नाव बह चली। वह ऊँचे स्वर से मुझे गाली देता हुआ चला। बहुत ही बुरी न सुनने लायक़ भाषा में, पवित्र गङ्गावक्ष को कलुषित करता

हुआ चला। मैंने साफ़ साफ़ सुना, वह मुझे डराने लगा, फिर अख़बार निकालकर मेरे नाम से निबन्ध लिखेगा।

आठवाँ परिच्छेद

उसी निर्जन रात में, मैं अन्धी युवती उसी रेती में खड़ी हुई गङ्गा का कल-कल जल-कल्लोल सुनने लगी।

हाय मनुष्य का जीवन! कितना असार है तू! क्यों आता है—क्यों रहता है—क्यों जाता है? यह दुःखमय जीवन क्यों? सोचने पर होश दुरुस्त नहीं रहते। शचीन्द्र बाबू एक दिन अपनी माता को समझा रहे थे, नियम के सभी अधीन हैं। मनुष्य का यह जीवन क्या उसी नियम का फल है? जिस नियम से फूल खिलते हैं, बादल दौड़ते हैं, चाँद उगता है,—जिस नियम से जल पर बुलबुला तैरता है, हँसता है, बिला जाता है; जिस नियम से धूल उड़ती है, तिन जलता है, पत्ती खुलकर गिरती है, उसी नियम से क्या यह सुख-दुःखमय मनुष्य का जीवन आबद्ध है, पूर्ण होता है और बिला जाता है? जिस नियम के वशीभूत होकर नदी के भीतर का वह घड़ियाल शिकार की खोज में फिर रहा है—जिस नियम के अधीन होकर इस रेती के छोटे छोटे कीट दूसरे कीटों की खोज करते फिर रहे हैं, क्यों उसी नियम के अधीन होकर मैं शचीन्द्र के लिए जान देने को बैठी हूँ? धिक् है इस जान देने को! धिक् है प्रणय को। धिक् है मनुष्य-जीवन को! क्यों इस गङ्गाजल में इसे छोड़ नहीं देती?

जीवन असार है, सुख नहीं, इसलिए असार है, यह बात नहीं। सेमर के पेड़ में सेमर के फूल ही लगेंगे, इसलिए उसे असार नहीं कहूँगी। दुःखमय जीवन में दुःख है, इसलिए उसे असार नहीं कहूँगी। लेकिन इसलिए असार कहती हूँ कि दुःख ही दुःख का परिणाम है।

इसके बाद और कुछ नहीं ! अपने मर्म का दुःख मैंने अकेले भोगा, कोई दूसरा नहीं जान पाया, कोई दूसरा नहीं समझा; दुःख को ज़ाहिर करने की भाषा नहीं, इसलिए ज़ाहिर नहीं कर सकी; श्रोता नहीं, इसलिए सुना नहीं सकी; सहृदय बोद्धा नहीं, इसलिए समझा नहीं सकी। एक सेमर के पेड़ से सैकड़ों पेड़ हो सकते हैं, परन्तु तुम्हारे दुःख से और कितने आदमियों का दुःख होगा ? दूसरे के अन्तःकरण में प्रवेश कर सकें, ऐसे कितने आदमी पृथ्वी में पैदा हुए हैं ? पृथ्वी में ऐसा कौन पैदा हुआ है जो अन्धी फूलवाली का दुःख समझेगा ? कौन ऐसा पैदा हुआ है जो, इस छोटे हृदय में, हर बात में, हर शब्द में, हर वर्ण में, जितने सुख-दुःख की तरंगें उठती हैं, सब समझ सकता है ? सुख-दुःख ? हाँ, सुख भी है। जब चैत के महीने में, फूलों के बोझ के साथ साथ मधुमक्खियाँ उड़ती हुई हमारे घर में पैठती थीं, तब उस गुञ्जन के साथ मुझमें सुख की कितनी तरंगें फटती थीं, कौन समझता था ? जब गीत-व्यवसायिनी की अट्टालिका से बाजा और गुञ्जन सन्ध्या के समीरण से कानों में आता था, तब मेरा सुख कौन समझा ? जब वामाचरण की तोतली वाणी फूटी थी, 'जल', कहते 'त' कहता था, 'कपड़ा' कहते 'कपा' कहता था, 'रजनी' कहते 'जुजी' कहता था, तब मेरे मन में कितना सुख उछलता था, कौन समझा था ? मेरा दुःख भी कौन समझेगा ? अन्धी के रूपोन्माद को कौन समझेगा ? न देखने का जो दुःख है, वह कौन समझेगा ? कहने पर भी समझ सकता है, परन्तु दुःख कभी ज़ाहिर जो नहीं कर सकी, यह दुःख कौन समझेगा ? पृथ्वी में जिस दुःख की भाषा नहीं, यह दुःख कौन समझेगा ? 'छोटे मुँह बड़ी बात' तुम लोग नहीं सुनना चाहते, छोटी भाषा में बड़ा दुःख क्या कहा जा सकता है ? ऐसा दुःख है कि मुझे जो दुःख है, उससे हृदय चकनाचूर हो जाने पर भी, कुल दुःख मैं ख़ुद भी सोचकर मन में नहीं ला सकती।

मनुष्य की भाषा में वैसे शब्द नहीं, मनुष्य की वैसी चिन्ताशक्ति

नहीं। दुःख भोग करती हूँ, परन्तु दुःख समझ नहीं पाती। मुझे कौन-सा दुःख है? कौन-सा है, यह नहीं जानती, परन्तु हृदय फटा जा रहा है। सदा देखोगे, जैसे तुम्हारा शरीर क्षीण होता जा रहा है, बल घटता जा रहा है, परन्तु तुम्हारे शरीर में रोग कौन-सा है, यह तुम नहीं समझ पा रहे। इसी तरह बहुत समय देखोगे कि दुःख से तुम्हारा हृदय फटा जा रहा है, प्राणों को निकालकर शून्य मार्ग में भेजने की इच्छा हो रही है, परन्तु क्या दुःख है, यह तुम ख़ुद नहीं समझ पा रहे। ख़ुद नहीं समझ पा रहे तो दूसरा क्या समझेगा? यह क्या साधारण दुःख है? और क्या यों ही कहती हूँ, जीवन असार है?

जो जीवन ऐसा दुःखमय है, उसकी रक्षा करने के लिए क्यों इतना डर रही थी? मैं क्यों उसे इसी वक़्त छोड़ नहीं देती? यह कलनादिनी गङ्गा की तरङ्गों में मैं खड़ी हूँ। दो क़दम और बढ़ने पर ही मर सकती हूँ। क्यों नहीं मरती? इस जीवन को रखकर क्या होगा? मरूँगी।

मैं क्यों पैदा हुई? क्यों अन्धी हुई? पैदा हुई तो शचीन्द्र के योग्य होकर क्यों नहीं हुई? शचीन्द्र के योग्य नहीं हुई तो शचीन्द्र को प्यार क्यों किया? प्यार किया तो उनके पास रह क्यों नहीं सकी? किसलिए शचीन्द्र को सोचकर घर छोड़ना पड़ा? निःसहाय, अन्धी होकर गङ्गा की रेती में मरने के लिए क्यों आई? क्यों बाढ़ के सामने मुट्ठी भर पैरे की तरह संसार के बहाव में अजानी राह बह चली? इस संसार में बहुत-से दुखी हैं, मैं सबसे अधिक दुखी क्यों हूँ? यह सब किसका खेल है? देवता का? जीव के इतने कष्ट में देवता को क्या सुख है? कष्ट देने के लिए पैदा करके क्या सुख है? मूर्तिमती निर्दयता को क्यों देवता कहूँगी? क्यों निष्ठुरता की पूजा करूँगी? मनुष्य का इतना भयानक दुःख कभी देवता का बनाया हुआ नहीं। ऐसा होता तो देवता राक्षस से हज़ारगुना निकृष्ट होता। तो क्या मेरा ही कर्मफल है? किस पाप से मैं जन्मान्ध हूँ?

दो-एक पैर बढ़ने लगी—मरूँगी! गङ्गा की तरङ्गों की ध्वनि कानों

में आने लगी—जान पड़ता है, मेरा मरना नहीं हुआ—मैं मीठी ध्वनि बहुत प्यार करती हूँ। नहीं, मरूँगी! ठोढ़ी डूब गई। अधर डूबा, थोड़ा-सा और है। नाक डूबी। आँखें डूबी। मैं डूबी।

डूबी, परन्तु मरी नहीं। तकलीफ़ों से भरे इस जीवन-चरित का और हिस्सा बयान करने की इच्छा नहीं होती। एक दूसरा आदमी कहेगा।

मैं उस प्रभात-वायु से ताड़ित गङ्गा के प्रवाह में मग्न होकर बहती बहती चली। क्रमशः साँस रुकती, चेतना लुप्त होती आई।

*

द्वितीय खण्ड

अमरनाथ की कथा

पहला परिच्छेद

मेरे इस असार जीवन की छोटी-सी कहानी लिखने की विशेष आवश्यकता है। इस संसार-समुद्र की किस चट्टान से टकराकर मेरी नाव टूटी है, यह इस विश्वचित्र में खींच रक्खूँगी। देखकर नये नाविक सजग हो सकते हैं।

मेरा वास या पुश्तैनी मकान शान्तिपुर में है। मेरे वर्तमान वास-स्थल का कुछ भी निश्चय नहीं। मैं अच्छे कायस्थ-कुल में पैदा हुआ हूँ। परन्तु मेरे पिता के कुल को एक बड़ा कलङ्क लगा था। मेरी चाची कुल छोड़ कर निकल गई थीं। मेरे पिता की जो कुछ जायदाद थी, उससे, दूसरे उपाय के बिना भी, परिवार का ख़र्च चल जाता था। लोग उन्हें धनी कहते थे। उन्होंने मेरी शिक्षा में काफ़ी धन लगाया था। मैंने भी थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना सीखा था। परन्तु उस बात से मतलब नहीं। साँप के मणि रहती है, मेरे विद्या थी।

मेरी विवाह योग्य उम्र होने पर बहुत-से सम्बन्ध आये। परन्तु पिता जी को कोई भी पसन्द नहीं आया। उनकी इच्छा थी, लड़की निहायत सुन्दरी होगी, लड़की के पिता बड़े धनी होंगे और कुलीनता के सब नियम ज्यों के त्यों रहेंगे। परन्तु इस तरह का कोई सम्बन्ध नहीं आया। असली बात यह है कि मेरे कुल का कलङ्क सुनकर किसी बड़े

आदमी ने मुझे कन्या देने की इच्छा नहीं की। इस तरह के सम्बन्ध की सोचते सोचते मेरे पिता का परलोकगमन हो गया।

अन्त में पिता के स्वर्गारोहण के बाद मेरी एक बुआ ने एक सम्बन्ध ला उपस्थित किया। गङ्गा के उस पार कालिकापुर नाम का एक गाँव था। इस इतिहास में भवानीपुर नाम के एक दूसरे गाँव का नाम आयेगा, यह कालिकापुर, उसी भवानीपुर के पास का गाँव है। मेरी बुआ की ससुराल उसी कालिकापुर में है। वहीं लवङ्ग नाम की किसी भले आदमी की लड़की के साथ बुआ ने मेरा सम्बन्ध उपस्थित किया।

सम्बन्ध से पहले मैं लवङ्ग को सदा देखता था। अपनी बुआ के मकान मैं कभी कभी जाता था। लवङ्ग को बुआ के यहाँ भी देखता था और उसके बाप के यहाँ भी देखता था। कभी कभी लवङ्ग को शिशुबोध से 'क' से 'कमला', 'ख' से 'खलिहान' सिखलाता था। जब उसके साथ मेरे विवाह की बातचीत हुई, तब से वह मेरे पास नहीं आती थी। परन्तु उसी समय से मैं भी उसे देखने के लिए और उत्सुक हो उठा। तब लवङ्ग के विवाह की उम्र पार हो चुकी थी। लवङ्ग-कलिका खिलने पर थी, आँखों की चितवन चञ्चल अथच डरी हुई हो आई थी, खिलखिलाना मधुर और लजीला हो आया था, द्रुतगति मन्थर होती आती थी। मैं सोचता था, ऐसा सौन्दर्य कभी नहीं देखा—यह सौन्दर्य युवती के भाग्य में कभी नहीं पड़ता। सचमुच, शैशव को पार कर आई हुई अप्राप्तयौवना और बोल नहीं फूटा, ऐसे शिशु का सौन्दर्य ही मनोहर है। यौवन का सौन्दर्य ऐसा नहीं। जवानी में वसन-भूषणों की भरमार, हँसी और चितवन की अधिकता, वेणी का हिलना, बाहों का बाँकपन, गर्दन की भङ्गिमा, बातचीत की चातुरी, युवती के रूप का विकास एक तरह दूकानदारी है। और हम लोग जिन आँखों से वह सौन्दर्य देखते हैं, वे भी विकृत हैं। जिस सौन्दर्य के उपभोग में इन्द्रिय के साथ चित्त का भाव जुड़ा नहीं, वही सौन्दर्य सौन्दर्य है।

इसी समय हमारे कुल का कलङ्क कन्या के अभिभावक के कानों में गया। सम्बन्ध उखड़ गया। मेरे हृदय की चिड़िया अभी इस लवङ्गलता पर बैठी ही थी, ऐसे समय भवानीनगर का रामसदय आकर लवङ्गलता को नोच ले गया। उसके साथ लवङ्गलता का विवाह हुआ, लवङ्गलता से निराश होकर मैं बहुत दुखी हुआ।

इसके कुछ साल बाद एक ऐसी घटना घटित हुई कि मुझसे कही नहीं जा रही। बाद को कहूँगा या नहीं, यह भी निश्चित नहीं कर पा रहा। तभी से मैंने घर छोड़ दिया। तभी से अनेकानेक देशों का पर्यटन करता फिर रहा हूँ, कहीं भी स्थायी नहीं हो सका।

कहीं भी स्थायी नहीं हो सका, परन्तु जी में लाने पर ही स्थायी हो सकता था; जी में लाने पर कुलीन ब्राह्मण की अपेक्षा अधिक विवाह कर सकता था। मेरे सब कुछ था—धन-सम्पत्ति, उम्र, विद्या, बाहुबल, किसी का अभाव नहीं था। भाग्य के दोष से, एक दिन की दुर्बुद्धिता से सब छोड़कर, यह सुखमय गृह—यह उद्यान जैसा पुष्पमय संसार त्याग कर, आँधी से उड़े तिनके की तरह देश-देश मारा फिरा। मैं अगर चाहता तो अपनी उस जन्मभूमि में रम्य गृह को तरह तरह से सजाकर रङ्गीनी की हवा में सुख का झण्डा फहरा कर हँसी के भार से दुःख-राक्षस के प्राण ले सकता था। परन्तु इस समय यही सोचता हूँ कि ऐसा क्यों नहीं किया! सुख-दुःख का विधान दूसरे के हाथ है, परन्तु मन तो मेरा है। तरङ्गों में नाव डूब गई। इसलिए मैं क्यों डूबा रहा, तैरने पर किनारा तो मिल सकता है। और दुःख—दुःख क्या है? मन की अवस्था, वह तो अपने अधिकार में है। सुख-दुःख दूसरे के हाथ है या मेरे अपने हाथ? दूसरा केवल बहिर्जगत् का कर्त्ता है, अन्तर्जगत् का मैं अकेला हूँ। अपना राज्य लेकर मैं सुखी नहीं हो सकता क्यों? जड़-जगत् जगत् है, अन्तर्जगत् क्या जगत् नहीं? अपना मन लेकर क्या रहा नहीं जा सकता? तुम्हारे बाह्य जगत् में जो कुछ सामग्रियाँ हैं, मेरे अन्तर में क्या वे नहीं? मेरे अन्तर में जो कुछ है, वह तुम्हारा बाह्य

जगत् दिखाये, उसकी क्या हिम्मत ? जो फूल इस मिट्टी में खिलता है, जो हवा इस आकाश में बहती है, जो चाँद इस गगन में उगता है, जो समुद्र इस अँधरे में आप मत्त होता है, तुम्हारे बाह्य संसार में वैसा कहाँ ?

तो क्यों, उस निशीथ के समय सोती सुन्दरी के सौन्दर्य की प्रभा—दूर हो ! एक दिन आधी रात के समय यह असीम पृथ्वी एकाएक मेरी आँखों में सूखे बेर की तरह छोटी हो गई, मुझे छिपने की जगह नहीं मिली। मैं देश-देश मारा फिरा।

दूसरा परिच्छेद

काल के शीतल प्रलेप से वह हृदय का क्षत क्रमशः भर उठने लगा।

काशीधाम में गोविन्दकान्त दत्त नाम के एक अति प्राचीन सम्भ्रान्त व्यक्ति से मेरी बातचीत हुई। ये बहुत दिनों से काशीवास कर रहे थे।

एक दिन उनसे वार्तालाप करते समय पुलिस के अत्याचार की बात प्रसङ्ग-क्रम से उठी। बहुतों ने पुलिस के अत्याचार की बहुत-सी बातें सुनाईं—दो-एक सत्य और दो-एक वक्ताओं की कपोल-कल्पित हो सकती हैं। गोविन्दकान्त बाबू ने एक घटना कही, उसका सारभाग यह है :—

"हरेकृष्णदास नाम का हमारे गाँव का एक ग़रीब कायस्थ था। एक लड़की छोड़कर उनके दूसरी सन्तान नहीं थी। उसकी गृहिणी की मृत्यु हो गई थी और ख़ुद भी रुग्ण रहता था। इसलिए वह लड़की उसने अपने साढ़ू को पालने के लिए दी थी। उस लड़की

के कुछ सोने के गहने थे, लोभ के कारण वे गहने साढू को नहीं दिये। परन्तु जब सामने मौत देखी, तब वे गहने उसने मुझे बुलाकर मेरे पास रख दिये। कहा, "मेरी लड़की होश में आये तो उसे दीजिएगा, अभी देने पर राजचन्द्र हड़प लेगा।" मैं स्वीकृत हुआ। बाद को, हरेकृष्ण की मृत्यु होने पर, वह लावारिस मरा है कहकर नन्दी-भृङ्गियों के साथ देवादिदेव महादेव दारोग़ा आ हाज़िर हुए! हरेकृष्ण की लोटा-थाली, डलिया-टोकरी लावारिस कहकर अपने कब्ज़े किया। किसी किसी ने कहा कि हरेकृष्ण लावारिस नहीं, कलकत्ते में उसकी लड़की है, दारोग़ा महाशय ने उसे भला-बुरा कहते हुए कहा, "वारिस कोई होगा तो आकर हाज़िर होगा।" उस वक़्त मेरे दो-एक दुश्मनों ने कहा था, गोविन्ददत्त के पास इसके सोने के गहने हैं। मुझे दारोग़ा साहब ने बुला भेजा। तब मैं देवादिदेव के सामने आकर हाथ जोड़कर खड़ा हुआ, कुछ गालियाँ खाईं। असामी की तरह चालान करने का उनका इरादा देखा। क्या कहूँ, घूँसे चलने का उद्योग देखकर गहने दारोग़ा जी के पादपद्मों में लाकर रख दिये, ऊपर से पचास रुपये नक़द दिये, तब छुटकारा हुआ।

कहना नहीं होगा कि दारोग़ा महाशय ने गहनों को अपनी लड़की के पहनने के विचार से घर भेज दिया। साहब के पास उन्होंने रपोट की कि हरेकृष्णदास के यहाँ एक लोटा और एक शमादान के अलावा और कुछ नहीं मिला। वह लावारिस मरा है, उसके कोई नहीं।

हरेकृष्णदास का नाम मैंने सुना था। मैंने गोविन्द बाबू से पूछा, "इस हरेकृष्णदास के एक भाई का नाम मनोहरदास है न?"

गोविन्दकान्त बाबू ने कहा, "हाँ, आप किस तरह समझे?"

मैंने विशेष कुछ नहीं कहा। पूछा, "हरेकृष्ण के साढ़ू का क्या नाम है?

गोविन्द बाबू ने कहा, "राजचन्द्रदास।"

मैं—उसका मकान कहाँ है ?

गोविन्द बाबू ने कहा, "कलकत्ते में, लेकिन किस जगह, यह मैं भूल गया हूँ।"

मैंने पूछा, "उस लड़की का नाम क्या है, जानते हैं ?"

गोविन्द बाबू ने कहा, "हरेकृष्ण ने उसका नाम रजनी रक्खा था।"

इसके कुछ ही दिन बाद मैंने काशी छोड़ दी।

तीसरा परिच्छेद

पहले मुझे समझना पड़ रहा है कि मैं क्या खोज रहा हूँ। मेरा चित्त दुःखमय है, यह संसार मेरे लिए अँधेरा है। अगर आज मेरी मृत्यु हो रही हो, तो मैं कल के लिए, नहीं रक्खूँगा। अगर दुःख को दूर नहीं कर सका तो पुरुषत्व क्या है ? परन्तु व्याधि की शान्ति के लिए पहले व्याधि का निर्णय चाहिए। दुःख दूर करने के पहले, मेरा दुःख क्या है, इसका निरूपण हो जाना चाहिए।

दुःख क्या है ? अभाव। रोग दुःख है, कारण, रोग स्वास्थ्य का अभाव है। अभावमात्र ही दुःख नहीं, यह जानता हूँ। रोग का अभाव दुःख नहीं। ख़ास ख़ास अभाव ही दुःख है।

मुझे किस बात का अभाव है ? मैं क्या चाहता हूँ ? धन ? मेरे काफ़ी है।

यश ? पृथ्वी में ऐसा कोई नहीं, जिसका यश नहीं। जो पक्का धोखेबाज़ है, बुद्धि के लिए उसका भी यश है। मैंने एक क़साई का भी यश सुना है—मांस के सम्बन्ध में वह किसी को नहीं ठगता था। मेढ़े के मांस के बदले उसने कभी किसी को कुत्ते का मांस नहीं दिया। यश सबका है। फिर किसी का यश पूर्ण नहीं। बेकन की बदनामी

रिश्वत लेने के लिए है—सुकरात को अपयश के कारण वध का दण्ड दिया गया था। द्रोण के वध में युधिष्ठिर ने मिथ्या-भाषण किया, अर्जुन बभ्रुवाहन से पराजित हुए थे। कैसर को विथीनिया की रानी कहते थे, वह बात आज तक प्रचलित है; शेक्सपीयर को वल्टेर ने भाँड़ कहा था। यश नहीं चाहिए।

यश साधारण लोगों में रहता है। साधारण लोग किसी विषय के विचारक नहीं। क्योंकि साधारण लोग मूर्ख और मोटी अक़्लवाले हैं। मूर्ख और मोटी अक़्लवालों के पास यशस्वी होकर मुझे क्या सुख होगा? मैं यश नहीं चाहता।

मान? संसार में ऐसा आदमी कौन है जिसके मानने पर मैं सुखी होऊँ? जो दो-चार आदमी हैं उनके पास मेरा मान है। दूसरे के पास मेरा मान सिर्फ़ अपमान है। राजदरबार में मान—उसे मैं दासता का मुख्य चिह्न समझकर नहीं चाहता। मैं मान नहीं चाहता। मान सिर्फ़ अपनी आँखों में चाहता हूँ।

रूप? कितना चाहिए। कुछ चाहिए। इसलिए कि लोग देखकर थूकें नहीं। मुझे देखकर कोई थूकता नहीं। जितना रूप है, मेरे लिए काफ़ी है।

स्वास्थ्य? मेरा स्वास्थ्य अब भी काफ़ी है।

बल? बल लेकर क्या करूँगा? प्रहार करने के लिए बल की आवश्यकता है। मैं किसी को प्रहार नहीं करना चाहता।

बुद्धि? इस संसार में कोई कभी नहीं सोचता कि उसे बुद्धि का अभाव है, मैं भी नहीं सोचता। सब अपने को अनन्त बुद्धिमान् समझते हैं, मैं भी समझता हूँ।

विद्या? मानता हूँ कि इसका अभाव है, परन्तु कभी किसी ने विद्या के अभाव से अपने को दुखी नहीं सोचा, मैं भी नहीं सोचता।

धर्म, लोग कहते हैं, धर्म का अभाव दूसरे जन्म के दुःख का कारण है, इस जन्म का नहीं। लोगों के चरित्र में देखने को मिलता है, अभाव ही दुःख है। मैं जानता हूँ, वह झूठ है, लेकिन जानकर भी धर्म की आकाङ्क्षा नहीं करता। मुझे वह दुःख नहीं।

प्रणय ? स्नेह ? प्यार ? मैं जानता हूँ, इसका अभाव ही सुख है, प्यार ही दुःख है। लवङ्गलता गवाह है।

फिर मुझे दुःख किस बात का है ? मुझे कौन-सा अभाव है ? मुझे कौन-सी चाह है कि उसकी प्राप्ति से सफल होकर दुःख का निराकरण करूँगा ? मेरी चाह की कौ-नसी चीज़ है ?

मैं समझा। मेरी चाह की चीज़ का न होना ही मेरा दुःख है। मैं समझा हूँ कि सभी असार है, इसी लिए केवल दुःख ही मेरा सार है।

चौथा परिच्छेद

कोई भी काम्य क्या मुझे खोजे नहीं मिला ? यह अनन्त संसार असंख्य रत्नों से भरा हुआ है, इसमें मेरी चाह की चीज़ क्या कोई नहीं ? जिस संसार में एक न देख पड़नेवाला क्षुद्र कीट-पतङ्ग अनन्त कौशल का स्थान है, अनन्त ज्ञान का भाण्डार है, जिस संसार में रास्ते की बालू का एक एक कण अनन्त रत्नों का प्रभाव फैलानेवाले पर्वत-राज का टूटा अंश है, उस संसार में क्या मेरी चाह की वस्तु कोई नहीं ? देखो, मैं तो नाचीज़ हूँ; टिन्डल, हक्सूली, डारविन और लायल एक आसन में बैठ कर ज़िन्दगी भर उस छोटी नीहार-विन्दु के, उस बालू के कण के या उस छोटे से फूल के गुणों का वर्णन नहीं कर सकते—फिर भी मेरी चाह की चीज़ नहीं ? मैं क्या हूँ ?

देखो इस पृथ्वी में कितने करोड़ आदमी हैं, यह किसी ने गिन कर पूरा नहीं किया। सन्देह नहीं, कई करोड़ मनुष्य हैं। उनमें एक मनुष्य असंख्य गुणों का आधार है। सभी भक्ति, प्रीति, दया, धर्मादि के आधार हैं—सभी पूज्य हैं, सभी अनुसरणीय हैं। मेरा काम्य क्या कोई नहीं? मैं क्या हूँ?

मेरी एक चाह की चीज़ थी—अब भी है। परन्तु वह इच्छा पूरी होने की नहीं। पूरी होने की नहीं, इसलिए उसे हृदय से, बहुत दिन हुए, निकाल डाला है। अब और उसे जगाना नहीं चाहता। क्या कोई दूसरी चाह की चीज़ संसार में नहीं?

उसे ही खोजता हूँ। क्या करूँगा?

कुछ सालों से मैं अपने आप यह सवाल कर रहा था, जवाब नहीं दे पाता था। जो दो-एक बन्धु-बान्धव हैं, उनसे पूछने पर कहते थे, "तुम्हारा अपना कोई काम न रहे तो दूसरे का काम करो। भरसक दूसरे का उपकार करो।"

यह तो पुरानी बात है। दूसरे का उपकार किस तरह होता है? राम की मा के लड़के को बोख़ार आया है, नब्ज़ देखकर थोड़ा-सा कुइनीन दो। रघ्घू पागल के बदन का कपड़ा नहीं, कम्बल ख़रीद दो। सरस्वती की मा बेवा हो गई है, उसे कुछ महीना बाँध दो। सुन्दर नाई का लड़का स्कूल में नहीं पढ़ सकता, उसकी फ़ीस का इन्तज़ाम कर दो। यही क्या दूसरे का उपकार है?

माना कि यही दूसरे का उपकार है। परन्तु इन सबमें कितना वक्त लगता है? कितना समय पार होता है? कितनी मिहनत पड़ती है? मानसिक शक्तियाँ कहाँ तक उत्तेजित होती हैं? मैं इस तरह नहीं कहता कि ये सब काम मैं शक्ति भर करता रहता हूँ; परन्तु जितना करता हूँ, उससे मुझे यह नहीं मालूम देता कि मेरा अभाव मिट जायगा। अपने योग्य काम मैं खोजता हूँ; जिसमें मेरा मन डूबा रहेगा वही खोजता हूँ।

लोगों के उपकार का एक दूसरा ढोंग खड़ा हुआ है। एक बात में उसका नामकरण करना पड़ा तो कहा जायगा "बकझक लिखालिखी।" सोसाइटी, क्लब एसोसियेशन, सभा, समाज, वक्तृता, रिज़ल्यूशन, आवेदन, निवेदन, समवेदन—मैं इनमें नहीं। एक समय किसी मित्र को एक महासभा में इस तरह एक आवेदन पढ़ते देखकर मैंने पूछा था, "क्या पढ़ रहे हो?" उन्होंने कहा, "ऐसा कुछ नहीं, सिर्फ़ काना फ़कीर भीख माँगता है, यह है।" मेरी छोटी-सी अक़्ल में यह सब वही है "सिर्फ़ काना फ़क़ीर भीख माँगता है रे बाबा।"

इस रोग का एक दूसरी तरह का विकार है। विधवा का ब्याह करो, कुलीन ब्राह्मण के ब्याह रोको, कम उम्र में ब्याह न करो, जातियाँ उठा दो, औरतें इस समय ढोरों की तरह शाला में बँधी रहती हैं—रस्सी खोलकर उन्हें छोड़ दो, चर खायँ। मेरे कोई ढोर नहीं। दूसरे की शाला से भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। जाति उठाने में मैं बहुत राज़ी नहीं हूँ, मैं उतना अभी सुशिक्षित नहीं हुआ। मैं अभी भी अपने झाड़ूदार के साथ एक जगह बैठकर खाने को राज़ी नहीं, उसकी लड़की से ब्याह भी नहीं करना चाहता, और शिरोमणि महाशय की जो गालियाँ चुपचाप बरदाश्त करूँगा, झाड़ूदार की नहीं कर सकूँगा। इसलिए मेरी जाति रहे। विधवा ब्याह करे तो करे, लड़के-लड़कियाँ बिना ब्याही हुई रहें तो रहें, कुलीन एक पत्नी की ताड़ना से सुखी हो तो हो; मुझे आपत्ति नहीं। परन्तु इसकी पीठ ठोंकने पर लोगों का क्या हित होगा, यह मेरी बुद्धि से परे है।

अस्तु, इस वङ्ग-समाज में मेरा कोई काम नहीं। यहाँ मैं कोई नहीं—मैं कहीं भी नहीं। मैं—मैं, यहीं तक हूँ, और कुछ नहीं। मेरा वही दुःख है। और कोई दुःख नहीं—लवङ्गलता के हाथ की लिपि भूला जा रहा हूँ।।

पाँचवाँ परिच्छेद

मेरे मन की ऐसी अवस्था थी, ऐसे समय काशीधाम में गोविन्द दत्त से रजनी का मैंने नाम सुना। मन में हुआ, ईश्वर ने शायद मुझे एक कठिन काम का भार सौंपा। इस संसार में मैंने एक काम पाया। रजनी का सही सही उपकार, कोशिश करने पर, किया जा सकता है। मेरा तो कोई काम नहीं, यह काम क्यों न करूँ? क्या यह मेरे योग्य काम नहीं?

यहाँ शचीन्द्र की वंशावली का कुछ परिचय देना पड़ा। शचीन्द्र के पिता का नाम रामसदय मित्र है, पितामह का नाम वाञ्छाराम मित्र, प्रपितामह का नाम केवलराम मित्र था। उनके पूर्वज कलकत्ते के रहनेवाले नहीं थे। उनके पूर्वपुरुषों का वास भवानीपुर गाँव में था। उसके प्रपितामह दरिद्र निर्धन व्यक्ति थे। पितामह ने बुद्धि-बल से धन-सञ्चय करके अपने भोगाधिकार की भू-सम्पत्ति ख़रीदी थी।

वाञ्छाराम के एक परम मित्र थे। नाम मनोहरदास। मनोहरदास की सहायता से ही वाञ्छाराम, वाञ्छाराम इस वैभव के अधिकारी हुए थे। मनोहर जी तोड़कर उनका काम करते थे, अपने लिए कभी धन-सञ्चय नहीं करते थे। वाञ्छाराम उनके इन गुणों के वशीभूत थे। मनोहर को सहोदर की तरह प्यार करते थे और मनोहर उन्हें बड़े भाई की तरह मानते थे, क्योंकि वे उम्र में बड़े थे। शचीन्द्र के पिता की उनके पितामह से वैसी प्रीति नहीं थी। जान पड़ता है, दोनों तरफ़ कुछ कुछ दोष था।

एक समय रामसदय से मनोहरदास का बड़ा विवाद हुआ। मनोहरदास ने वाञ्छाराम से कहा कि रामसदय ने उन्हें किसी बात पर ऐसा अपमानित किया है कि वह सहनशीलता से परे है। अपमान की बात वाञ्छाराम से कहकर मनोहरदास अपना काम छोड़कर सपरिवार भवानीनगर से उठ गये। वाञ्छाराम ने मनोहर से बड़ी

अनुनय-विनय की, परन्तु मनोहर ने एक नहीं सुनी। उठकर किस देश में जाकर बसे, यह भी किसी से उन्होंने नहीं ज़ाहिर किया।

वाञ्छाराम रामसदय को जितना भी स्नेह करते रहे हों, मनोहर को उससे भी अधिक करते थे, इसलिए रामसदय पर उनका क्रोध अपरिसीम हुआ। वाञ्छाराम ने रामसदय को बड़ी कड़ी कड़ी गालियाँ सुनाईं, रामसदय ने कुल गालियाँ चुपचाप बरदाश्त नहीं कीं।

पिता-पुत्र की तकरार का नतीजा यह हुआ कि वाञ्छाराम ने पुत्र को घर से निकाल दिया। पुत्र ने भी घर छोड़कर क़सम खाई कि फिर कभी पिता के घर मुँह नहीं दिखायेंगे। गुस्से में आकर वाञ्छाराम ने एक वसीयतनामा लिखा। उसमें लिखा गया कि वाञ्छाराम मित्र की सम्पत्ति का उनका लड़का रामसदय कभी अधिकारी नहीं होगा। वाञ्छाराम मित्र के न रहने पर, मनोहरदास के अभाव में मनोहर के उत्तराधिकारी अधिकारी होंगे; उनके अभाव में रामसदय के पुत्र-पौत्रादि यथाक्रम से होंगे, परन्तु रामसदय नहीं।

रामसदय घर छोड़कर पहली स्त्री को लेकर कलकत्ता आये। उस स्त्री का कुछ पिता का दिया धन था। उसके सहारे और एक सज्जन वणिक साहब की अनुकूलता से वे वाणिज्य में लगे। लक्ष्मी सुप्रसन्ना हुईं। संसार-निर्वाह के लिए उन्हें कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा।

यदि कष्ट पाते, तो जान पड़ता है, वाञ्छाराम सदय होते। पुत्र के सुख की अवस्था सुनकर वृद्ध में जो स्नेहावशेष था, वह भी दूर हो गया। मान के कारण कि पिता के बिना बुलाये नहीं जाऊँगा, पुत्र ने फिर पिता की कोई ख़बर नहीं ली। अभक्ति और अवज्ञा के कारण पुत्र ऐसा कर रहा है, यह सोचकर वाञ्छाराम ने भी उसे फिर नहीं बुलाया।

अस्तु, किसी की नाराज़गी कम नहीं हुई। वसीयत भी ज्यों-की त्यों रही। इसी समय एकाएक वाञ्छाराम का स्वर्गवास हो गया।

रामसदय दुखी हुए; पिता की मृत्यु के पहले उनसे मिलकर अपना कर्तव्य-पालन नहीं किया; इस दुःख से बहुत दिनों तक रोते रहे। वे भवानीनगर फिर नहीं गये। कलकत्ते में ही पिता के श्राद्ध आदि कृत्य किये। क्योंकि, इस समय वह मकान अब मनोहरदास का हुआ।

इधर मनोहरदास की कोई ख़बर नहीं थी। बाद को मालूम हुआ कि वाञ्छाराम के जीते हुए भी मनोहर का कोई संवाद किसी को कभी नहीं मिला। मनोहरदास भवानीनगर से जब से गये, तब से गये। कहाँ गये, वाञ्छाराम ने इसकी बड़ी खोज की, किसी तरह कोई संवाद नहीं मिला। तब उन्होंने वसीयत में एक अंश और जोड़ा। उसमें विष्णुराम सरकार नाम के कलकत्ते के रहनेवाले अपने एक कुटुम्बी को वसीयत का एक्ज़ीक्यूटर नियुक्त किया। उनसे यह बात रही कि वे कोशिश करके मनोहरदास की खोज करेंगे। बाद को फल के अनुसार सम्पत्ति जिसकी होगी, उसे देंगे।

विष्णुराम बाबू बड़े विचक्षण, निरपेक्ष और कर्मठ व्यक्ति थे। वे वाञ्छाराम की मृत्यु के बाद ही मनोहरदास की खोज करने लगे; बहुत परिश्रम और अर्थव्यय करके वाञ्छाराम जिसका पता नहीं लगा सके थे, उसकी गूढ़ बातें उन्होंने मालूम कीं। खोज करने पर मोटी मोटी बातें ये मालूम हुईं कि मनोहर भवानीनगर से भगकर कुछ काल तक ढाका-अञ्चल में जाकर रहे थे। बाद को वहाँ जीविकोपार्जन में कष्ट होने पर नाव से कलकत्ता आ रहे थे। रास्ते में तूफ़ान में पड़कर सपरिवार जलमग्न हो गये। उनका कोई दूसरा उत्तराधिकारी था, ऐसा संवाद नहीं मिला।

इन सब बातों के पुष्ट प्रमाण संग्रह करके विष्णुराम बाबू ने रामसदय को दिखलाये। तब वाञ्छाराम की भू-सम्पत्ति शचीन्द्र के दो भाइयों में बँटी और विष्णुराम बाबू ने भी उनके हाथों उसे अर्पित किया।

इस समय यह रजनी अगर जीती रहे तो जो सम्पत्ति रामसदय मित्र भोग कर रहे हैं, वह रजनी की है। रजनी शायद बहुत ही ग़रीब है। खोज लेकर देखा जाय। मेरा और कोई काम नहीं।

छठा परिच्छेद

बङ्गाल आने के बाद एक समय एक गाँव के कुटुम्बी के यहाँ न्योते गया था। सुबह टहलने निकला था। एक जगह बड़ा ही मनोहर सुनसान जङ्गल था। चिड़ियाँ सातों स्वर मिलाकर ताज्जुब में डालनेवाला कन्सर्ट बजा रही थीं। चारों ओर पेड़ सटे हुए, कोमल श्याम पल्लवों से समाच्छन्न; पत्तों की ठसाठस मिलावट, श्यामरूप की कितनी राशियाँ; कहीं कलियाँ, कहीं खिले फ़ूल; कहीं कच्चे और कहीं पके फल। उसी वन में एक चीख़ सुनी। वन के भीतर पैठकर देखा, एक विकट मूर्तिवाला पुरुष एक युवती को बलपूर्वक खींच रहा है।

देखने के साथ समझा, पुरुष बहुत ही नीच जाति का पामर है। जान पड़ा, डोम या सिउली होगा। कमर में हँसिया खोंसे हुए था। गठन अच्छे बलवान् की जैसी थी।

धीरे धीरे उसके पीछे गया। पहुँचकर उसकी कमर से हँसिया निकालकर दूर फेंक दिया। दुष्ट ने तब युवती को छोड़ दिया—मेरे सामने आया। मुझे गाली दी। उसकी निगाह देखकर मुझे शङ्का हुई।

समझा, इस जगह देर नहीं करनी चाहिए। एक साथ उसके गले में हाथ लगाया। छुड़ाकर उसने भी मुझे पकड़ा। मैंने भी दोबारा उसे पकड़ा। उसके बल ज़्यादा था। परन्तु मैं डरा नहीं, न जल्दी की। अवकाश मिलने पर मैंने युवती से कहा, तुम इस समय भागो, मैं इसे उपयुक्त दण्ड दे रहा हूँ।

युवती ने कहा, "कहाँ भगूँगी ? मैं अन्धी जो हूँ ! यहाँ के रास्ते नहीं पहचानती।"

अन्धी हो ! मेरा बल जैसे बढ़ गया। मैं रजनी नाम की एक अन्धी लड़की को खोज रहा था।

देखा, वह बलवान् मुझे मार तो नहीं पा रहा, लेकिन मुझे बलपूर्वक खींचे लिये जा रहा है। उसका मतलब समझा, जिस तरफ़ मैंने हँसिया फेंका था, उसी तरफ़ वह मुझे घसीटे लिये जा रहा है। तब मैंने दुष्ट को छोड़कर पहले हँसिया उठाया। उसने एक पेड़ की डाल तोड़ ली और घुमाकर मेरे हाथ में मारा। मेरे हाथ से हँसिया गिर गई। हँसिया उठाकर तीन-चार वार मुझ पर करके वह भग गया।

मुझे गहरी चोट आई। दर्द होने लगा। बड़े कष्ट से मैं कुटुम्बी के घर की ओर चला। अन्धी युवती मेरे पैरों की ध्वनि का पीछा करती हुई मेरे साथ साथ आने लगी। कुछ दूर चलकर फिर मैं नहीं चल सका। पथिक जन मुझे पकड़ कर मेरे कुटुम्बी के यहाँ छोड़ आये।

वहाँ कुछ दिन मैं शय्याशायी रहा। दूसरे आश्रय के न रहने पर और मेरी क्या दशा होती है यह बिना जाने कहीं जा नहीं सकती इसलिए भी, अन्धी युवती भी वहीं रही।

बहुत दिनों बाद बड़े कष्ट से मैं अच्छा हुआ।

लड़की को अन्धी देखकर ही मुझे सन्देह हुआ था। जिस दिन पहले पहल वह मेरी चारपाई के निकट आई, उसी दिन मैंने उससे पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है जी ?"

"रजनी।"

मैं चौंक उठा। पूछा, "तुम राजचन्द्रदास की लड़की हो ?"

रजनी भी ताज्जुब में आई, कहा, "आप क्या पिता जी को पहचानते हैं ?"

मैंने खुलकर कोई जवाब नहीं दिया।

पूरी तरह अच्छा हो जाने पर मैं रजनी को कलकत्ता ले गया।

सातवाँ परिच्छेद

कलकत्ता जाते समय मैं अकेला रजनी को साथ नहीं ले गया। कुटुम्बी के गृह से तीनकौड़ी नाम की एक बुड्ढी दासी के साथ ले गया। यह चौकसी रजनी को ख़ुश रखने के लिए थी। चलते वक़्त रजनी से पूछा, "रजनी, तुम्हारा मकान तो कलकत्ते में है, लेकिन तुम यहाँ आई किस तरह ?"

रजनी ने कहा, "क्या मुझे कुल बातें कहनी होंगी ?"

मैंने कहा, "तुम्हारी अगर इच्छा न हो तो न कहो।"

सचमुच इस अन्धी लड़की की बुद्धि, विवेचना और सरलता से मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ था। उसे किसी तरह का क्लेश पहुँचाने की मेरी इच्छा नहीं थी। रजनी ने कहा, "जब कि आज्ञा दी है आपने, तो कुछ बातें छिपा न रक्खूँगी। गोपाल बाबू नाम के मेरे एक पड़ोसी हैं, उनकी स्त्री चम्पा है, चम्पा से एकाएक मेरी जान-पहचान हुई थी। उसका नैहर हुगली में है। उसने मुझसे पूछा, "मेरे नैहर जाओगी ?" मैं राज़ी हो गई। वह मुझे एक दिन साथ लेकर गोपाल बाबू के मकान ले आई। परन्तु अपने नैहर भेजते समय ख़ुद मेरे साथ नहीं चली। अपने भाई हीरालाल को मेरे साथ किया। हीरालाल किराये की नाव करके मुझे हुगली ले चला।"

मैं यहाँ समझ गया कि रजनी हीरालाल के सम्बन्ध की बातें छिपा रही है। मैंने पूछा, "तुम उसके साथ गईं ?"

रजनी ने कहा, "इच्छा नहीं थी, लेकिन जाना पड़ा। क्यों जाना पड़ा, यह नहीं कह सकूँगी। रास्ते में हीरालाल मुझ पर अत्याचार करने लगा। मैं उसकी बात नहीं मानती, देखकर वह मुझे निराश करने के लिए गङ्गा की एक रेती पर उतार कर नाव लेकर चला गया।"

रजनी चुप हो गई। मैं हीरालाल को छद्मवेशी राक्षस समझ कर मन-ही-मन उसके रूप का ध्यान करने लगा। इसके बाद रजनी कहने लगी, "उसके चले जाने पर मैं डूब मरूँगी सोच कर पानी में डूबी।"

मैंने पूछा, "क्यों? क्या तुम हीरालाल को इतना प्यार करती थीं?"

रजनी ने भौंहें टेढी कीं। कहा, "रत्ती भर नहीं। संसार में इतनी नफ़रत मुझे किसी से नहीं।"

"तो डूबकर मरने क्यों चलीं?"

"मुझे जो दुःख है, वह मैं आपसे कह नहीं सकती।"

"अच्छी बात है, कहो, फिर।"

"मैं पानी में डूब कर फिर ऊपर आ गई। एक यात्रियों की नाव जा रही थी। उस नाव के यात्रियों ने मुझे उतराते देखकर नाव पर ले लिया। जिस गाँव में आपसे मुलाक़ात हुई, वहाँ एक आरोही उतरा। उतरने के समय उसने मुझसे पूछा, "तुम कहाँ उतरोगी?" मैंने कहा, "मुझे जहाँ उतार देंगे, मैं वहीं उतरूँगी। तब उसने पूछा, "तुम्हारा मकान कहाँ है? मैंने कहा, 'कलकत्ता'। उसने कहा, 'मैं कल फिर कलकत्ता जाऊँगा। तुम आज मेरे साथ आओ।" आज मेरे घर रहोगी। कल तुम्हें कलकत्ता छोड़ आऊँगा।' मैं ख़ुश होकर उसके साथ उतरी। वह मुझे साथ ले चला। इसके बाद का हाल आप सब जानते हैं।"

मैंने पूछा, "जिसके हाथ से तुम्हें मैंने छुड़ाया, वह क्या वही है?"

"वह वही है।"

मैं रजनी को कलकत्ता ले आया और उसके बतलाये हुए स्थान में खोजकर राजचन्द्रदास का मकान प्राप्त किया। वहाँ रजनी को ले गया।

कन्या के मिलने पर राजचन्द्र बहुत ख़ुश हुआ। उसकी स्त्री बहुत रोई। मुझसे रजनी की कुल कथा सुनकर उन लोगों ने मेरे लिए बड़ी कृतज्ञता प्रकट की।

बाद के राजचन्द्र को एकान्त में ले जाकर मैंने पूछा, "तुम्हारी लड़की ने घर क्यों छोड़ा था, जानते हो?"

राजचन्द्र ने कहा, "नहीं। मैं यह सदा सोचा करता हूँ, परन्तु कोई निश्चय नहीं कर पाता।" मैंने पूछा, "रजनी किस दुःख से पानी में डूबकर मरने गई थी, जानते हो?"

राजचन्द्र आश्चर्य में पड़ गया। कहा, "रजनी को ऐसा कौन-सा दुःख है, कुछ भी तो नहीं समझ में आ रहा। वह अन्धी है, यह बहुत बड़ा दुःख अवश्य है। परन्तु इसके लिए इतने दिनों बाद डूबकर मरने क्यों चलेगी? परन्तु इतनी बड़ी लड़की है, अभी तक ब्याह नहीं हुआ; लेकिन इसके लिए भी नहीं, उसकी तो सगाई हो चुकी थी, ब्याह हो रहा था। ब्याह की अगली रात को भग गई थी।"

मुझे नई बात मिली। पूछा, "वह भगी थी?"

राज०—हाँ।

मैं—तुम लोगों से बिना कहे!

राज०—किसी से भी बिना कहे।

मैं—किसके साथ सगाई की थी?

राज०—गोपाल बाबू के साथ।

मैं—कौन हैं गोपाल बाबू? चम्पा के पति?

राज०—आप सब कुछ तो जानते हैं। वही हैं।

मुझे कुछ प्रकाश दिखा। चम्पा ने सौत के डाह से धोखा देकर रजनी को भाई के साथ हुगली भेजा था। जान पड़ता है, उसी के परामर्श से हीरालाल ने रजनी का सत्यानाश करने की कोशिश की थी।

ऐसी कोई बात न कहकर मैंने राजचन्द्र से कहा, "मैं सब कुछ जानता हूँ। मैं और भी जो कुछ जानता हूँ, तुमसे कहता हूँ। तुम कुछ छिपाना नहीं।"

राज०—क्या, फ़र्माइए।

मैं—रजनी तुम्हारी लड़की नहीं।

राजचन्द्र आश्चर्य में आ गया। कहा, "सो क्या ? मेरी लड़की नहीं तो किसकी है ?"

"हरेकृष्ण दास की।"

राजचन्द्र कुछ देर चुप रहा। अन्त में कहा, "आप कौन हैं, यह नहीं जानता। परन्तु आपके पैरों पड़ता हूँ, यह बात रजनी से न कहिएगा।"

मैं—अभी नहीं कहूँगा, लेकिन कहना होगा। मैं जो कुछ पूछता हूँ, उसका सही सही जवाब दो। जब हरेकृष्ण मरा था तब रजनी के कुछ गहने थे ?"

राजचन्द्र डरा। कहा, "मैं तो उसके गहने की बात कुछ भी नहीं जानता। गहना कोई भी नहीं मिला।"

मैं—हरेकृष्ण की मृत्यु के बाद तुम उसकी छोड़ी सम्पत्ति की खोज में उस देश गये थे ?

राज०—हाँ, गया था। जाने पर सुना, हरेकृष्ण के जो कुछ था, पुलिस ले गई है।

मैं—इस पर तुमने क्या किया ?

राज०—मैं और क्या करता ? मैं पुलिस से बहुत डरता हूँ, रजनी के कड़ों के चोरीवाले मुक़दमे में बड़ी दिक़्क़त में पड़ा था। पुलिस का नाम सुनकर मैंने फिर कुछ नहीं कहा।

मैं—रजनी के कड़ों का चोरीवाला मुक़दमा कैसा है ?

राज०—रजनी की पसनी के समय उसके कड़े चोरी चले गये थे। चोर पकड़ा गया। बर्दवान में उसका मुक़दमा हुआ था। कलकत्ते से बर्दवान मुझे गवाही देने के लिए जाना पड़ा था। बड़ी दिक़्क़तें झेली थीं।

मुझे रास्ता नज़र आया।

त्रितीय खण्ड

शचीन्द्र की कथा

पहला परिच्छेद

यह भार मुझ पर पड़ा है। रजनी के जीवन-चरित्र का यह अंश मुझे लिखना होगा। लिखूँगा।

मैंने रजनी के ब्याह का कुल उद्योग किया था। विवाह के दिन सुबह सुना था कि रजनी भग गई है, मिल नहीं रही। उसकी बड़ी खोज की, लेकिन वह मिली नहीं। किसी ने कहा था, वह बिगड़ी है। मैंने विश्वास नहीं किया। मैंने उसे बहुत बार देखा था। क़सम खा सकता हूँ, वह भ्रष्टा नहीं हो सकती। परन्तु यह हो सकता है कि वह कुमारी है, कौमार्यावस्था में किसी के प्रेम में पड़कर विवाह की शङ्का से घर छोड़कर चली गई हो। परन्तु इस पर भी दो आपत्तियाँ उठती हैं, पहली, जो अन्धी है, वह किस तरह साहस करके आश्रय छोड़कर जा सकती है; दूसरी, जो अन्धी है, वह क्या प्रेम में पड़ सकती है। मन में आया, कदापि नहीं। कोई हँसो नहीं, मेरी तरह के महामूर्ख बहुत हैं। हम लोग दो-तीन किताबें पढ़कर सोचते हैं, संसार में चेतना चेतन के गूढ़ से गूढ तत्त्व सब हमने हस्तामलकवत् कर लिये हैं। जो कुछ हमारी बुद्धि में नहीं आता, उस पर विश्वास नहीं करते। ईश्वर को नहीं मानते, क्योंकि हमारी क्षुद्र विचार-शक्ति में उस बृहत् तत्त्व की मीमांसा नहीं होती। अन्ध का रूपोन्माद किस तरह समझूँगा

खोज करते करते समझा कि जिस रात से रजनी ग़ायब हुई है, उसी रात से हीरालाल भी ग़ायब है। सब लोग कहने लगे, हीरालाल के साथ उसने कुल-त्याग कर दिया है। लाचार मैंने यह सिद्धान्त किया कि हीरालाल रजनी को धोखा देकर ले गया है। रजनी परमा सुन्दरी है; अन्धी हो, पर ऐसा आदमी नहीं जो उसके रूप से मुग्ध नहीं होगा। हीरालाल उसके रूप से मुग्ध होकर उसे धोखा देकर ले गया है, अन्धे को धोखा देना बहुत आसान है।

कुछ दिन बाद हीरालाल प्रकट हुआ। मैंने उससे कहा, "तुम्हें रजनी का हाल मालूम है?"

उसने कहा, "नहीं।"

क्या करूँ! दावा-फरियाद चल नहीं सकती। मैंने बड़े भाई से कहा। बड़े भाई ने कहा, "रास्कैल को मारो।" परन्तु मारकर क्या होगा? मैं अख़बारों में विज्ञापन देने लगा। जो रजनी का पता बतायेगा, उसे पुरस्कार दूँगा, घोषणा की। कुछ फल नहीं हुआ।

दूसरा परिच्छेद

रजनी जन्मान्ध है, परन्तु उसकी आँखें देखने पर अन्धी नहीं मालूम देतीं। आँखें देखने में कोई दोष नहीं। आँखें बड़ी बड़ी, नीली, भौंरे-से काले तारे। बड़ी सुन्दर आँखें हैं, परन्तु उनमें कटाक्ष नहीं। आँखोंवाली नसें बिगड़ी हैं, इसलिए अन्धी है। नसों की निश्चेष्टता के कारण रेटीना में पड़ा प्रतिबिम्ब मस्तिष्क में नहीं पहुँचता। रजनी सर्वाङ्ग सुन्दरी है। रंग निकलते हुए निरे कच्चे केले के पत्ते की तरह गोरा है, गठन वर्षा के जल से भरी नदी की तरह पूर्णता प्राप्त किये हुए, मुखकान्ति गम्भीर है; गति और हाथ-पैर की भङ्गिमायें मृदुल, स्थिर

और अन्धता के कारण सदा सङ्कोचज्ञापक हैं; हँसी दुःख से भरी। एकाएक इस स्थिर प्रकृति के सुन्दर मुख पर कटाक्षहीन दृष्टि देखने पर किसी पटु शिल्पी की प्रयत्न-निर्मित पत्थर की स्त्रीमूर्ति मालूम देती थी।

रजनी को पहले पहल देखते ही मुझे विश्वास हो गया था कि यह सौन्दर्य अनिन्द्य होने पर भी मन को मोहनेवाला नहीं। रजनी रूपवती है, परन्तु उसका रूप देखकर कभी कोई पागल नहीं होगा। उसकी आँखों में वह मोहिनी गति नहीं। सौन्दर्य देखकर लोग तारीफ़ करेंगे, जान पड़ता है, वह मूर्ति सहज ही भूलेंगे नहीं; क्योंकि उस स्थिर गम्भीर कान्ति की एक अद्भुत आकर्षण-शक्ति है। परन्तु वह आकर्षण दूसरी तरह का है। इन्द्रियों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। जिसे पञ्चवाण कहते हैं, रजनी के रूप के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं। सचमुच नहीं।

जो कुछ भी हो, मैं बीच बीच सोचता था, रजनी की दशा क्या होगी? वह इतर आदमी की लड़की है, परन्तु उसे देखने पर ही मालूम देता है कि वह इतर प्रकृति की नहीं। इतर आदमी के सिवा दूसरे से उसके विवाह की सम्भावना नहीं। इतर आदमी के साथ भी एक समय ब्याह नहीं हुआ। ग़रीब की स्त्री घर के कामकाज के लिए है। उस स्त्री की अन्धता के कारण घर के कामकाज में मदद नहीं मिलेगी—उससे कौन दरिद्र ब्याह करेगा? इस पर यह अन्धी है। ऐसे पति के साथ रहने पर रजनी को दुःख के सिवा सुख नहीं मिलेगा। काँटों के दुश्छेद्य वन में यत्न से पाले-पोसे जानेवाले उद्यान-पुष्प के जन्म लेने की तरह इस रजनी का फूल बेचनेवाले के यहाँ जन्म हुआ है। काँटों से घिरकर ही इसे मरना होगा। फिर मैं गोपाल से इसका ब्याह करने के लिए इतना व्यस्त क्यों रहा? ठीक ठीक नहीं जानता। हाँ, छोटी माँ का बहुत बड़ा अत्याचार है; उन्हीं की उत्तेजना से मैं इसको ब्याह देना चाहता था। और क्या कहूँ,

जिससे ख़ुद ब्याह नहीं कर सकता, उसका ब्याह कर देने की इच्छा होती है।

यह बात सुनकर बहुत-सी सुन्दरियाँ मधुर हँसी हँसकर पूछ सकती हैं, तुम्हारी क्या मन ही मन रजनी से ब्याह करने की इच्छा है? नहीं, वह इच्छा नहीं। रजनी सुन्दरी होने पर भी अन्धी है, रजनी फूल बेचनेवाली की लड़की है और रजनी अशिक्षिता है। रजनी से मैं ब्याह नहीं कर सकता, इच्छा भी नहीं। विवाह के लिए मेरी अनिच्छा भी नहीं। सिर्फ़ जैसी चाहता हूँ, वैसी लड़की नहीं मिलती। मैं जिससे ब्याह करूँगा, वह रजनी जैसी सुन्दरी होगी, साथ ही उसके कटाक्ष से बिजली टूटती होगी। वंश और मर्यादा में शाहआलम या मल्हारराव होल्कर की प्र-प्रपौत्र-सम् पौत्री होगी, विद्या में लीलावती या शापभ्रष्टा सरस्वती होगी; चरित्र में लक्ष्मी, रन्धन में द्रौपदी, आदर में सत्यभामा और गृहकर्म में गदाधर की अम्मा। मेरे पान खाने के समय पान से लौंग निकाल देगी, तम्बाकू पीने के समय हुक़्क़े पर चिलम रख गई या नहीं बतला देगी, भोजन के समय मछली के काँटे निकाल देगी और नहाने के बाद मैंने बदन पोंछा या नहीं, निगरानी करेगी; मैं चा पीने के समय दावात में चम्मच डालकर चाय की खोज न करूँ और स्याही की खोज में चाय के पात्र में क़लम न डालूँ, इसके लिए सतर्क रहेगी; पीकदान में रुपये रखकर सन्दूक़ में थूकूँ नहीं इसकी देखभाल करेगी। मित्र को ख़त लिखकर अपना नाम सिरनामे में लिखूँ तो संशोधन कर लेगी, पैसा देता हुआ रुपया नहीं दे रहा, इसकी सावधानी रक्खेगी; नोट की दूसरी ओर दूकानदार को चीज़ों की तालिका नहीं लिख रहा, देखेगी, और मज़ाक़ करते वक़्त समधिन के नाम की जगह भक्तिमती पड़ोसिन का नाम आजाने पर ग़लती सुधार देगी। दवा पीते वक़्त तेल न पीलूँ, नौकरानी को पुकारते हौस के साहब की मेम का नाम न लूँ, इन विषयों में सदा सजग रहेगी; ऐसी लड़की मिले तो ब्याह करूँ। आप लोग जो इन्हें-उन्हें

खोद खोद कर हँस रही हैं; आप लोगों में अगर कोई अविवाहिता और इन सब गुणों में गुणवती हों तो कहें, मैं पुरोहित को बुलाऊँ।

तीसरा परिच्छेद

अन्त में राजचन्द्र दास से सुनने को मिला कि रजनी मिली है। राजचन्द्र दास इस विषय में हम लोगों से बड़ा अच्छा व्यवहार करने लगे। रजनी कहाँ मिली, किस प्रकार मिली, यह कुछ भी नहीं बताया। हम लोगों ने बहुत पूछा, किसी तरह भी कोई बात निकाल नहीं पाये। उसने घर क्यों छोड़ा था, यह भी पूछा, परन्तु उत्तर नहीं मिला। उसकी स्त्री भी वैसी ही। छोटी माँ सुई की तरह आदमी के मन में पैठती हैं, परन्तु उससे कोई बात निकाल नहीं सकीं। रजनी ख़ुद फिर हमारे मकान नहीं आई। क्यों नहीं आई, यह भी नहीं मालूम किया जा सका। अन्त में राजचन्द्र और उसकी स्त्री ने भी हमारे यहाँ का आना छोड़ दिया। छोटी माँ ने दुखी होकर उनकी खोज में आदमी भेजा। आदमी ने लौटकर जवाब दिया, वे लोग सपरिवार किसी दूसरी जगह उठ गये हैं, पहलेवाले मकान में नहीं। कहाँ गये हैं, इसका कोई पता नहीं लगाया जा सका।

इसके एक महीने बाद एक भले आदमी मुझसे मिलने आये। आने के साथ उन्होंने अपना परिचय दिया। "मेरा घर कलकत्ता नहीं, मेरा नाम अमरनाथ घोष है, शान्तिपुर का रहनेवाला हूँ।"

तब मैं उनसे बातचीत करने लगा। क्यों वे आये, एकाएक उनसे पूछ नहीं सका। पहले-पहल उन्होंने भी कुछ नहीं कहा। अस्तु समाज और राजनीति पर तरह तरह की बातें होती रहीं। देखा, वे बातचीत में बड़े पक्के हैं। उनकी बुद्धि मार्जित है, शिक्षा पूरी और विचार दूर तक पहुँचे हुए। बातचीत से कुछ अवकाश मिलने पर वे

मेरी 'शेक्शपीयर गैलरी' के पन्ने उलटने लगे। तब तक मैं अमरनाथ को देख लेने लगा। अमरनाथ देखने में सुन्दर पुरुष हैं, गोरा रङ्ग, कुछ नाटे, मोटे भी नहीं, दुबले भी नहीं; बड़ी बड़ी आँखें, बाल मुलायम, घुँघराले, सँवारे हुए। वस्त्राभूषणों में भड़कीलापन नहीं, लेकिन सफ़ाई और सुथरापन है। बातचीत करने का ढङ्ग दिल को खींचनेवाला है, गला बड़ा मीठा। देखकर समझा, आदमी बड़ा चतुर है।

शेक्शपीयर गैलरी के पन्ने उलटना समाप्त होने पर अमरनाथ ने अपने काम की कोई बात न उठाकर उस पुस्तक की तसवीरों की आलोचना शुरू की। मुझे समझा दिया कि जो कुछ बात और काम से खिंचा है, उसे तसवीर में खींचने की कोशिश करना धृष्टता है। वह चित्र कभी पूरा नहीं उतर सकता और ये चित्र सम्पूर्ण नहीं। डेसडिमना का चित्र देखकर कहा, "आप इस चित्र में धीरता, मधुरता, नम्रता देख रहे हैं, परन्तु धीरता के साथ वह साहस कहाँ है? नम्रता के साथ वह सतीत्व का अहङ्कार कहाँ है?" जुलियट की मूर्ति देखकर कहा, "यह नवयुवती की मूर्ति है सही, परन्तु इसमें जुलियट के नवयौवन की अदमनीय चञ्चलता कहाँ है?"

अमरनाथ इस तरह कितना कहने लगे। शेक्सपीयर की नायिकाओं से शकुन्तला, सीता, कादम्ब, वासवदत्ता, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आ गईं। अमरनाथ ने एक एक करके उनके चरित्र का विश्लेषण किया? प्राचीन साहित्य के प्रसङ्ग पर प्राचीन इतिहास की चर्चा आ गई। इस पर तासीतस, प्लटार्क, थूकीदीदिस आदि की अपूर्व समालोचना की अवतारणा हुई। प्राचीन इतिहास-लेखकों का मत लेकर अमरनाथ ने कोमत् के त्रैकालिक उन्नति से सम्बन्ध रखनेवाले मत का समर्थन किया। कोमत् से समालोचक मिल और हक्सली तक बात पहुँची। हक्सली से वएस और डारविन, डारविन से बुकानेयर, सोपेनहेयर आदि की आलोचना आई। अमरनाथ अपने

पाण्डित्य का धाराप्रवाह मेरे कानों में प्रविष्ट करने लगे। मैं मुग्ध होकर असली बात भूल गया।

दिन ढल चुका देखकर अमरनाथ ने कहा; "जनाब को बहुत परेशान नहीं करूँगा। जिस लिए आया था, वह अभी तक कहा नहीं गया। राजचन्द्र दास, जो आप लोगों को फूल बेचता था, उसके एक लड़की है ?"

मैंने कहा, "जान पड़ता है, है।"

अमरनाथ कुछ हँसकर बोले, "जान पड़ता है, नहीं; वह है। मैंने उससे ब्याह करने का निश्चय किया है।"

मैं ताज्जुब में आ गया। अमरनाथ कहने लगे; "मैं राजचन्द्र से यही बात कहने गया था, उससे कह चुका हूँ। इस समय आप लोगों से एक बात है। जो बात कहूँगा, वह जनाब के पिता के पास कहना ही उचित समझता हूँ; क्योंकि वे मालिक हैं; परन्तु जो कुछ कहूँगा, उससे आप लोगों के नाराज़ होने की बात भी है। आप स्वभाव के सबसे ज़्यादा धीर हैं। और धर्मज्ञ हैं, इसलिए आपसे ही कह रहा हूँ।"

मैंने पूछा, "कौन सी बात जनाब ?"

अमर०—रजनी की कुछ जायदाद है।

मैं—वह क्या ? वह तो राजचन्द्र की लड़की है।

अमर०—राजचन्द्र की वह पाली हुई लड़की है।

मैं—फिर वह किसकी लड़की है ? कहाँ उसे जायदाद मिली ? यह बात अब तक हम लोगों ने क्यों नहीं सुनी ?

अमर०—आप लोग जो जायदाद दख़ल किये हुए हैं, यही रजनी की है। रजनी मनोहरदास के भाई की लड़की है।

पहले एक दफ़ा चौंक गया। बाद को समझा, किसी जालसाज़ धोखेबाज़ के हाथ पड़ा हूँ। क़हक़हा लगाते हुए कहा, "जनाब के शायद

मेरी 'शेक्शपीयर गैलरी' के पन्ने उलटने लगे। तब तक मैं अमरनाथ को देख लेने लगा। अमरनाथ देखने में सुन्दर पुरुष हैं, गोरा रङ्ग, कुछ नाटे, मोटे भी नहीं, दुबले भी नहीं; बड़ी बड़ी आँखें, बाल मुलायम, घुँघराले, सँवारे हुए। वस्त्राभूषणों में भड़कीलापन नहीं, लेकिन सफ़ाई और सुथरापन है। बातचीत करने का ढङ्ग दिल को खींचनेवाला है, गला बड़ा मीठा। देखकर समझा, आदमी बड़ा चतुर है।

शेक्शपीयर गैलरी के पन्ने उलटना समाप्त होने पर अमरनाथ ने अपने काम की कोई बात न उठाकर उस पुस्तक की तसवीरों की आलोचना शुरू की। मुझे समझा दिया कि जो कुछ बात और काम से खिंचा है, उसे तसवीर में खींचने की कोशिश करना धृष्टता है। वह चित्र कभी पूरा नहीं उतर सकता और ये चित्र सम्पूर्ण नहीं। डेसडिमना का चित्र देखकर कहा, "आप इस चित्र में धीरता, मधुरता, नम्रता देख रहे हैं, परन्तु धीरता के साथ वह साहस कहाँ है ? नम्रता के साथ वह सतीत्व का अहङ्कार कहाँ है ?" जुलियट की मूर्ति देखकर कहा, "यह नवयुवती की मूर्ति है सही, परन्तु इसमें जुलियट के नवयौवन की अदमनीय चञ्चलता कहाँ है ?"

अमरनाथ इस तरह कितना कहने लगे। शेक्सपीयर की नायिकाओं से शकुन्तला, सीता, कादम्ब, वासवदत्ता, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आ गईं। अमरनाथ ने एक एक करके उनके चरित्र का विश्लेषण किया ? प्राचीन साहित्य के प्रसङ्ग पर प्राचीन इतिहास की चर्चा आ गई। इस पर तासीतस, प्लटार्क, थूकीदीदिस आदि की अपूर्व समालोचना की अवतारणा हुई। प्राचीन इतिहास-लेखकों का मत लेकर अमरनाथ ने कोमत् के त्रैकालिक उन्नति से सम्बन्ध रखनेवाले मत का समर्थन किया। कोमत् से समालोचक मिल और हक्सली तक बात पहुँची। हक्सली से वएस और डारविन, डारविन से बुकानेयर, सोपेनहेयर आदि की आलोचना आई। अमरनाथ अपने

पाण्डित्य का धाराप्रवाह मेरे कानों में प्रविष्ट करने लगे। मैं मुग्ध होकर असली बात भूल गया।

दिन ढल चुका देखकर अमरनाथ ने कहा; "जनाब को बहुत परेशान नहीं करूँगा। जिस लिए आया था, वह अभी तक कहा नहीं गया। राजचन्द्र दास, जो आप लोगों को फूल बेचता था, उसके एक लड़की है ?"

मैंने कहा, "जान पड़ता है, है।"

अमरनाथ कुछ हँसकर बोले, "जान पड़ता है, नहीं; वह है। मैंने उससे ब्याह करने का निश्चय किया है।"

मैं ताज्जुब में आ गया। अमरनाथ कहने लगे; "मैं राजचन्द्र से यही बात कहने गया था, उससे कह चुका हूँ। इस समय आप लोगों से एक बात है। जो बात कहूँगा, वह जनाब के पिता के पास कहना ही उचित समझता हूँ; क्योंकि वे मालिक हैं; परन्तु जो कुछ कहूँगा, उससे आप लोगों के नाराज़ होने की बात भी है। आप स्वभाव के सबसे ज्यादा धीर हैं। और धर्मज्ञ हैं, इसलिए आपसे ही कह रहा हूँ।"

मैंने पूछा, "कौन सी बात जनाब ?"

अमर०—रजनी की कुछ जायदाद है।

मैं—वह क्या ? वह तो राजचन्द्र की लड़की है।

अमर०—राजचन्द्र की वह पाली हुई लड़की है।

मैं—फिर वह किसकी लड़की है ? कहाँ उसे जायदाद मिली ? यह बात अब तक हम लोगों ने क्यों नहीं सुनी ?

अमर०—आप लोग जो जायदाद दख़ल किये हुए हैं, यही रजनी की है। रजनी मनोहरदास के भाई की लड़की है।

पहले एक दफ़ा चौंक गया। बाद को समझा, किसी जालसाज़ धोखेबाज़ के हाथ पड़ा हूँ। क़हक़हा लगाते हुए कहा, "जनाब के शायद

कोई काम नहीं। मुझे बड़ा काम है। इस समय आपसे मज़ाक़ करने की फ़ुरसत मुझे नहीं। आप अपने घर तशरीफ़ ले जाइए।"

अमरनाथ ने कहा, "तो वकील से आपको संवाद मिलेगा।"

चौथा परिच्छेद

इधर विष्णुराम बाबू ने संवाद भेज दिया कि मनोहरदास का उत्तराधिकारी मिल गया है, सम्पत्ति छोड़नी होगी। तो अमरनाथ जालसाज़, धोखेबाज़ नहीं!

कौन उत्तराधिकारी है, विष्णुराम बाबू ने पहले कुछ नहीं कहा। लेकिन अमरनाथ की बात याद आई। जान पड़ता है, रजनी ही उत्तराधिकारिणी है। जो आदमी हक़दार है, वह मनोहरदास का सच्चा उत्तराधिकारी है या नहीं, यह मालूम करने के लिए मैं विष्णुराम बाबू के पास गया। मैंने कहा, "जनाब, आपने पहले कहा था, मनोहरदास सपरिवार पानी में डूबकर मरा है। इसका प्रमाण भी है, फिर उसका वारिस कहाँ से आया?"

विष्णुराम बाबू ने कहा, "हरेकृष्ण दास नाम का उसके एक भाई था, शायद आप जानते हैं?"

मैं—यह तो जानता हूँ, परन्तु वह भी तो मर गया है।

विष्णु०—सही है, लेकिन मनोहर के बाद मरा है; इसलिए वह सम्पत्ति का अधिकारी होकर मरा है।

मैं—होगा, लेकिन हरेकृष्ण के भी तो इस समय कोई नहीं?

विष्णु०—पहले ऐसा ही सोचकर आपके हाथ सम्पत्ति सौंप दी थी, परन्तु अब समझ रहा हूँ कि उसके एक कन्या है।

मैं—तो इतने दिन उस कन्या का कोई प्रसङ्ग क्यों नहीं खड़ा हुआ ?

विष्णु०—हरेकृष्ण की स्त्री पति से पहले मरी थी। स्त्री की मृत्यु के बाद कन्या को पालने में अक्षम होकर हरेकृष्ण ने कन्या को अपनी साली को दे दिया था। उनकी साली ने उस कन्या को अपनी कन्या की तरह पाला-पोसा और अपनी कन्या के नाम से परिचित किया। हरेकृष्ण की मृत्यु के बाद उसकी सम्पत्ति लावारिस है, मैजिस्ट्रेट साहब से प्रमाण मिला, तब हरेकृष्ण को लावारिस सोचा था। परन्तु इस समय हरेकृष्ण के एक पड़ोसी ने मेरे पास पहुँचकर उसकी कन्या का हाल कहा है। उसके बताये हुए सन्धान से चलकर मैंने मालूम किया है कि उसके एक कन्या सही सही है।

मैंने कहा, "किसी भी एक लड़की को पकड़कर धूर्त्त लोग हरेकृष्ण दास की लड़की कह सकते हैं। परन्तु वह सही सही हरेकृष्ण दास की लड़की है, इसका क्या कोई प्रमाण है ?"

"है," कहकर विष्णु बाबू ने मुझे एक काग़ज़ देखने के लिए दिया; कहा, "इस विषय में जो जो प्रमाण संगृहीत हुए, वे इसमें मैंने लिख लिये हैं।"

मैं वह काग़ज़ लेकर पढ़ने लगा। उसमें लिखा था कि हरेकृष्ण दास के साढ़ू राजचन्द्र दास हैं और उनकी लड़की का नाम रजनी है।

जो प्रमाण देखे, वे भयानक थे। हम लोग अब तक अन्धी रजनी के धन से धनी होकर उसे दरिद्र कहकर घृणा करते थे।

विष्णुराम ने एक मुचलके की नक़ल मेरे हाथ में रखकर कहा, "अब देखिए यह मुचलका किसका है ?"

मैंने पढ़कर देखा, मुचलके के कहनेवाले हरेकृष्ण दास हैं, मैजिस्ट्रेट के सामने कड़े के चोरी के एक मुक़दमे में यह मुचलका दे रहे हैं। मुचलके में पिता का नाम और मुक़ाम लिखा रहता है, वह भी मैंने पढ़कर देखा। वह मनोहरदास के पिता के नाम और

मुक़ाम से मिला। विष्णुराम ने पूछा, "मनोहरदास के भाई हरेकृष्ण-दास का यह मुचलका आपको मालूम पड़ रहा है या नहीं ?"

मैं—मालूम पड़ रहा है।

विष्णु०—अगर संशय हो तो अभी उसका खण्डन हो जायगा। पढ़ते जाइए।

पढ़ने लगा, वह कह रहा है, 'मेरे छः महीने की एक लड़की है। एक हफ़्ता हुआ, उसका अन्न-प्राशन कर चुका हूँ। अन्न-प्राशन के दिन तीसरे पहर उसके कड़े चोरी चले गये हैं।"

यहाँ तक पढ़ा जाने पर विष्णुराम ने कहा, "देखिए, कितने दिन का मुचलका है ?"

मुचलके की तारीख़ देखी, मुचलका उन्नीस साल का है।

विष्णुराम ने कहा, उस लड़की की उम्र इस समय हिसाब करने पर कितनी ठहरती है ?"

मैं—उन्नीस साल कुछ महीने प्रायः बीस साल।

विष्णु०—रजनी की उम्र का क्या अनुमान करते हैं ?

मैं—प्रायः बीस।

विष्णु०—पढ़ जाइए, हरेकृष्ण ने कुछ बाद बालिका का नामोल्लेख किया है।

मैं पढ़ने लगा। देखा कि, एक जगह हरेकृष्ण फिर से मिले कड़ों को देखकर कह रहे हैं "ये कड़े मेरी लड़की रजनी के कड़े हैं, यह सही है।"

अब अधिक संशय की बात नहीं रह गई। फिर भी पढ़ने लगा। प्रतिवादी का मुख़्तार हरेकृष्ण से पूछ रहा है, "तुम ग़रीब आदमी हो, अपनी लड़की को सोने के कड़े कैसे दिये ?" हरेकृष्ण जवाब दे रहे हैं, "मैं ग़रीब हूँ, लेकिन मेरे भाई मनोहरदास कुछ उपार्जन करते हैं, उन्होंने मेरी लड़की को सोने के गहने बनवा दिये हैं।"

यही हरेकृष्ण दास हमारे मनोहरदास का भाई है, इसमें संशय की जगह नहीं रह गई।

बाद को मुख़्तार फिर पूछ रहा है, "तुम्हारे भाई ने तुम्हारी स्त्री या किसी दूसरे को और कभी गहना दिया है?"

उत्तर—नहीं।

फिर प्रश्न—निर्वाह का ख़र्च देता है?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—तो तुम्हारी लड़की को अन्न-प्राशन में सोने के गहने जो दिये, इसकी क्या वजह है?

उत्तर—मेरी यह लड़की जन्मान्ध है, इसलिए मेरी स्त्री सदा रोती थी। मेरे भाई और भावज ने दुःखी होकर यह सोचा कि इनका दुःख अगर कुछ दूर हो, यह सोचकर अन्न-प्राशन के वक़्त लड़की को ये गहने दिये हैं।

जन्मान्ध है। फिर वह वही रजनी है, इस विषय में सन्देह और क्या है?

मैंने हताश होकर मुचलका रख दिया। कहा, "मुझे अब विशेष सन्देह नहीं।"

विष्णुराम ने कहा, "इतने कम प्रमाण में आपको सन्तुष्ट होने के लिए मैं नहीं कहता। एक दूसरे मुचलके की नक़ल देखिए।"

दूसरा मुचलका भी देखा, वह भी उसी कहे हुए कड़े के चोरी-वाले मुक़दमे में लिया गया था। इस मुचलके का देनेवाला राजचन्द्र दास है। वही एकमात्र कुटुम्बी थे, इसलिए अन्न-प्राशन में उपस्थित थे। वे हरेकृष्ण के साढ़ू हैं, यह परिचय दे रहे हैं, और चोरी की कुल बातें प्रमाणित कर रहे हैं।

विष्णुराम ने कहा, "इस समय का राजचन्द्र दास वही राजचन्द्र है। संशय हो तो बुलाकर पूछ लीजिए।"

मैंने कहा, "ज़रूरत नहीं।"

विष्णुराम ने कुछ और कागज़ात दिखाये, उन सबका वृत्तान्त विस्तार के साथ कहा जायेगा तो सबको अच्छा नहीं लगेगा। इतना कहने पर ही बहुत होगा कि यही रजनी दासी जो हरेकृष्ण दास की लड़की है, इसमें मुझे संशय नहीं रहा। तब देखा, वृद्ध माता-पिता को लेकर अन्न के लिए व्याकुल होकर घूमना होगा।

विष्णुराम से कहा, "मुक़दमा लड़ना व्यर्थ है। सम्पत्ति रजनी की है, उसकी सम्पत्ति उसे दे दूँगा। लेकिन मेरे जेठे भाई इस विषय में मेरे बराबर के हक़दार हैं, सिर्फ़ उनसे पूछने की प्रतीक्षा रह गई।"

मैं एक बार अदालत जाकर असली बयान देख आया। इस समय पुरानी नत्थियाँ फाड़ डालते हैं, उस समय रहती थीं। असली बयान देखकर मालूम किया कि नक़ल में कोई कृत्रिमता नहीं।

सम्पत्ति रजनी को छोड़ दी।

पाँचवाँ परिच्छेद

रजनी को सम्पत्ति तो छोड़ दी, परन्तु उस पर किसी ने दख़ल नहीं किया।

राजचन्द्र दास एक दिन मुलाक़ात करने आया। उसकी ज़बानी सुना कि सिमला (कलकत्ता) में एक मकान ख़रीद कर वहीं वह रजनी को लेकर रहता है। पूछा, 'तुम्हें रुपये कहाँ मिले ?" राजचन्द्र ने कहा, "अमरनाथ ने क़र्ज़ दिया है, बाद को सम्पत्ति से चुकाया जायगा।" मैंने पूछा, "फिर तुम लोग सम्पत्ति पर कब्ज़ा क्यों नहीं कर रहे ?" उसने कहा, "वे बातें अमरनाथ बाबू जानें।" "अमरनाथ बाबू ने क्या रजनी से ब्याह किया है ?" राजचन्द्र ने कहा, "नहीं।" बाद

को राजचन्द्र से बात-चीत करते करते मैंने पूछा, "राजचन्द्र इतने दिनों तक तुम्हें मैंने देखा क्यों नहीं ?"

राजचन्द्र ने कहा, "हाँ, कुछ आड़-आड़ में रहता था।"

मैं—किसका क्या चुराया है जो आड़-आड़ में रहते थे ?

राज०—चोरी किसकी करूँगा ? हाँ, अमरनाथ बाबू ने कहा था कि इस समय सम्पत्ति के मामले में कुछ अड़चन पड़ रही है, कुछ दिन आँख-ओट रहना अच्छा है; आदमी के आँखों की लाज तो है ही ?

मैं—अर्थात् कहीं हम लोग कुछ छोड़ देने के लिए अनुरोध न करें ? अमरनाथ बाबू विज्ञ आदमी हैं, देख रहा हूँ। ख़ैर, कुछ भी हो, इस समय जो बड़े देख पड़े ?

राज०—आपके पिता ने मुझे बुलाया है।

मैं—मेरे पिता ने ? उन्हें तुम्हारी ख़बर कैसे मालूम हुई ?

राज०—लोगों से सन्धान लेकर।

मैं—इतनी ढूँढ़-तलाश क्यों ? सम्पत्ति छोड़ने के अनुरोध के लिए तो नहीं ?

राज०—नहीं—नहीं, सो क्यों–सो क्यों ? एक दूसरी बात के लिए। इस समय रजनी की कुछ सम्पत्ति हुई है, देखकर बहुतेरे विवाह करना चाहते हैं। कहाँ विवाह किया जाय, यही आप लोगों से पूछने के लिए आया हूँ।

मैं—क्यों, अमरनाथ बाबू के साथ तो विवाह हो रहा था ? उन्होंने इतने प्रयत्न से रजनी की सम्पत्ति का उद्धार किया, उन्हें छोड़ कर और किससे ब्याह करोगे ?

राज०—यदि उनसे भी अच्छा पात्र मिले ?

मैं—अमरनाथ की अपेक्षा अच्छा पात्र कहाँ मिलेगा ?

राज०—सोचिए, आप जैसे हैं, ऐसा पात्र अगर मिला ?

हम तीन आदमी प्राण भी दे सकते हैं, तुम हमारे लिए एक अन्धी लड़की से ब्याह नहीं कर सकते ?

विचार में छोटी मा से हारा। हारने पर ग़ुस्सा बढ़ता है। मेरा ग़ुस्सा बढ़ा और मन में यह विश्वास जड़ पकड़ गया कि रुपये के लिए रजनी से शादी करना अन्याय है। मैंने डींग मारकर कहा, "तुम लोग जो कुछ भी कहो, मैं यह विवाह नहीं करूँगा।"

छोटी मा भी डींग मारकर बोलीं, "तुम यह जो कुछ भी कहो, मैं अगर कायस्थ की लड़की हूँ तो तुम्हारा यह ब्याह करूँगी ही!"

मैंने हँसकर कहा, "तो फिर जान पड़ता है, तुम ग्वाले की लड़की हो। मेरा यह विवाह नहीं कर सकोगी।"

छोटी मा ने कहा—"नहीं बेटा, मैं कायस्थ की लड़की हूँ।"

छोटी मा बड़ी दुष्ट हैं। बाबा कहकर मुझे ही गाली लौटा दी।

छठा परिच्छेद

मेरे मकान में एक संन्यासी बीच बीच आकर रहते थे। कोई संन्यासी कहता था, कोई ब्रह्मचारी, कोई दण्डी, कोई अवधूत। पहनावे में गेरुआ वस्त्र, गले में रुद्राक्ष की माला, सर पर रूखे बाल, जटा नहीं, लाल चन्दन की एक छोटी बिन्दी, पैरों में धूल या कीच कुछ नहीं, संन्यासी जाति में ये कुछ बाबू हैं। चन्दन की लकड़ी की खड़ाऊँ, ऊपर हाथी-दाँत का काम! वे जो भी हों, लड़के उन्हें संन्यासी महाशय कहते थे, इसलिए मैं भी कहूँगा।

पिता कहीं से उन्हें ले आये थे। अनुभव से मालूम किया, पिता को मन में विश्वास था, संन्यासी बहुत तरह की दवायें जानते हैं और तान्त्रिक याग-यज्ञ में सुदक्ष हैं। मेरी सौतेली मा बाँझ हैं।

पिता की कृपा से संन्यासी ने ऊपर के एक बैठके में क़ब्ज़ा किया। यह मेरे लिए कुछ विरक्तिजनक हो गया था। फिर शाम के वक्त सूर्य की तरफ़ मुँह करके सारङ्ग रागिनी में आर्याछन्द में स्तोत्र-पाठ करता था। यह बगला-भाव मुझसे और सहा नहीं गया। मैं गले में हाथ लगाकर निकाल देने के इरादे उनके पास गया। कहा, "संन्यासी जी, छत पर खाक़-पत्थर क्या कर रहे थे?"

संन्यासी हिन्दुस्तानी थे, परन्तु हम लोगों के साथ जिस भाषा में बातचीत करते थे, उसका चौदह आना उलटी सीधी संस्कृत थी, एक आना हिन्दी और एक आना बँगला। मैं बँगला भर रखता था। संन्यासी ने जवाब दिया, "क्यों, क्या बकता हूँ, क्या आपको मालूम नहीं?"

मैंने पूछा—"क्या वेदमन्त्र हैं?"

सं०—हो भी सकते हैं।

मैं—पढ़ने पर क्या होता है?

सं०—कुछ नहीं?

जवाब में संन्यासी की विजय थी—मैंने यहाँ तक प्रत्याशा नहीं की। फिर पूछा, "तो पढ़ते क्यों हैं?"

सं०—क्यों, सुनने में क्या कष्टकर है?

मैं—नहीं, सुनने में बुरे नहीं, विशेष रूप से आप सुकण्ठ हैं। लेकिन अगर कुछ फल नहीं तो पढ़ते क्यों हैं?

स०—जहाँ पढ़ने से किसी को कोई क्षति नहीं, वहाँ पढ़ने में कौन-सा नुक़सान है।

मैं ज़बरदस्ती करने आया था, लेकिन देखा कि कुछ हट गया हूँ, इसलिए दबाकर पकड़ना पड़ा। कहा, "हानि नहीं, परन्तु बिना फल की आकाङ्क्षा के कोई काम नहीं करता; अगर वेदगाना निष्फल है तो आप वेद गाते क्यों हैं?"

सं०—आप भी तो पण्डित हैं, आप ही कहिए, पेड़ पर कोयल क्यों गाती है?

पेंच में पड़ा। इसके दो उत्तर हैं, एक—'इससे कोयल को सुख है"—दूसरा—"स्त्री-कोयल को मोहित करने के लिए।" कौन कहूँ? पहला पहले कहा।—"गाने में ही कोयल को सुख है।"

सं०—गाने से ही मुझे सुख होता है।

मैं—तो टप्पा-ख्याल आदि के रहते वेदगान क्यों करते हैं?

सं०—कौन बातें सुखकर हैं, सामान्य गणिकाओं के बुरे गीतों का गाना सुखकर है या देवताओं की असीम महिमा के गीत गाना सुखकर है?

हारकर दूसरे उत्तर पर गया। कहा, कोयल गाती है स्त्री-कोयल को मोहित करने के लिए। मोह लेने में जो शारीरिक स्फूर्ति होती है, उससे जीव को सुख मिलता है? कण्ठ की स्फूर्ति उसी शारीरिक स्फूर्ति के अन्तर्गत है। आप किसे मुग्ध करना चाहते हैं?"

संन्यासी ने हँसकर कहा, "अपने मन को, मन आत्मा का अनुरागी नहीं, आत्मा का हितकारी नहीं। उसे वशीभूत करने के लिए गाता हूँ।"

मैं—आप लोग दार्शनिक हैं, मन और आत्मा को अलग अलग मानते हैं। परन्तु मन एक अलग और आत्मा एक अलग पदार्थ है, यह हम लोग नहीं मान सकते। मन की ही क्रियायें हम लोग देखते हैं—इच्छा, प्रवृत्ति आदि हमारे मन में हैं। सुख मेरे मन में है, दुःख मेरे मन में है फिर मन से परे आत्मा क्यों मानेंगे? जिसका क्रिया देखते हैं, उसे ही मानेंगे। जिसका कोई चिह्न नहीं देखते, उसे क्यों माने?

सं०—तो कहो कि मन और शरीर एक है, शरीर और मन का भेद क्यों मानेंगे। जो कुछ काम हो रहा है, क्या सब शरीर का काम है—मन का कोई काम नहीं?

मैं—चिन्ता, प्रवृत्ति, भोग आदि हैं।

सं०—किस तरह समझे, सब शरीर की क्रियायें नहीं?

मैं—यह भी सही है। मन शरीर की सिर्फ़ क्रिया है।

सं०—अच्छा, अच्छा। तो कुछ और आओ। कहो कि शरीर भी पञ्चभूत की क्रिया है, सिर्फ़ सुना है, तुम लोग पञ्चभूत नहीं मानते, तुम लोग बहुभूत-वादी हो। कहो कि पृथ्वी आदि अन्य भूत शरीर-रूप धारण करके सब कुछ कर रहे हैं। यह जो तुम मुझसे बातचीत कर रहे हो—मैं कहूँ कि केवल पृथ्वी आदि मेरे सामने खड़े होकर शब्द कर रहे हैं, शचीन्द्रनाथ नहीं। मन और शरीर आदि की कल्पना की आवश्यकता क्या है? पृथ्वी आदि से जुदा शचीन्द्रनाथ का अस्तित्व नहीं मानते।

हार कर भक्तिभाव से संन्यासी को प्रणाम कर उठ गया। परन्तु तभी से संन्यासी पर कुछ प्रीति हुई। सब समय उनके पास चल कर बैठता था और शास्त्रीय आलाप करता था। देखा, सन्यासी का बहुत तरह का दण्ड-कमण्डल है। संन्यासी दवा देता है, हाथ देखकर भविष्य बतलाता है, बीच बीच याग-होम आदि भी किया करता है—नल* चलाता है, चोर बतला देता है, और भी बहुत तरह का दण्ड-कमण्डल करता है। एक दिन मेरे लिए असह्य हो गया। मैंने उससे कहा, "आप महामहोपाध्याय पण्डित हैं, आप यह सब दण्ड-कमण्डल क्यों करते हैं?"

सं०—कौन है दण्ड-कमण्डल?

मैं—यह नल चलाना, हाथ गिनना आदि।

सं०—कुछ अनिश्चित ज़रूर हैं, लेकिन कर्तव्य हैं।

---

* 'नल चलाना' बङ्गाल में कहते हैं—बाँस की दो लम्बी कमानियों का अर्द्धवृत्त-रूप बनाया जाता है; दो आदमी दोनों तरफ़ दोनों हाथों से पकड़ते हैं; मन्त्र के बल से नल खींचता रहता है; फिर चोर को दोनों कमानियों में दबा लेता है।

मैं—आप जिसे अनिश्चित जानते हैं, उससे लोगों को धोखा क्यों देते हैं ?

स०—तुम लोग मुर्दे की चीरफाड़ क्यों करते हो ?

मैं—शिक्षा के लिए।

सं०—जो शिक्षित हैं, वे क्यों चीरफाड़ करते हैं।

मैं—तत्त्व के अनुसन्धान के लिए।

सं०—हम लोग भी तत्त्व के अनुसन्धान के लिए यह सब किया करते हैं। सुना है, विलायती पण्डितों में बहुतेरे कहते हैं, लोगों के सर की गढ़न देखकर उसके चरित्र की बात कही जा सकती है। यदि सर की गढ़न से चरित्र की बात कही जा सकती है तो हाथ की रेखा देखने पर क्यों नहीं कही जा सकेगी ? यह मानते हैं कि हाथ की रेखा देखकर हममें कोई अब तक ठीक ठीक नहीं कह सका, इसका कारण यह हो सकता है कि इसका सही सही सङ्केत अभी नहीं मिला, परन्तु क्रमशः हाथ देखते देखते सही सही सङ्केत प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए हाथ पाने ही पर देखता हूँ।

मैं—और नल चलाना ?

सं०—तुम लोग लोहे के तार से संसार भर में लिपि चला सकते हो, हम लोग क्या नल भी नहीं चला सकते ? तुममें एक भ्रम है, तुम लोग सोचते हो, जो कुछ अँगरेज़ जानते हैं वही सत्य है, जो नहीं जानते वह असत्य, वह मनुष्य के ज्ञान के अतीत है, वह असाध्य है। वास्तव में वैसा नहीं। ज्ञान अनन्त है। कुछ तुम जानते हो, कुछ मैं जानता हूँ, कुछ दूसरे जानते हैं; परन्तु कोई कह नहीं सकता कि मैं सब जानता हूँ। कुछ अँगरेज़ जानते हैं, कुछ हमारे पूर्व पुरुष जानते थे। अँगरेज़ जो कुछ जानते हैं, वह ऋषि नहीं जानते थे; ऋषि जो कुछ जानते थे, अँगरेज़ आज तक वह नहीं जान सके। वे सब आर्य-विद्यायें प्रायः लुप्त हो गई हैं। हममें कोई कोई दो-एक जानते हैं। यत्न से छिपा रखते हैं, किसी को सिखलाते नहीं।

मैं हँसा—संन्यासी ने कहा, "तुम विश्वास नहीं कर रहे, कुछ प्रत्यक्ष देखना चाहते हो?"

मैंने कहा, "देखने पर समझ सकता हूँ।"

संन्यासी ने कहा, "बाद के दिखलाऊँगा। इस समय तुमसे मेरी एक ख़ास बात है। मुझसे तुम्हारी घनिष्ठता है। तुम्हारे पिता ने मुझसे अनुरोध किया है कि ब्याह के लिए तुम्हें प्रवृत्त करूँ।"

मैंने हँसकर कहा, "प्रवृत्त करने की आवश्यकता नहीं, मैं विवाह करूँगा—परन्तु—"

संन्यासी—परन्तु क्या?

मैं—लड़की कहाँ है, एक अन्धी लड़की है, उससे विवाह नहीं करूँगा।

सं०—इस बङ्गाल में क्या तुम्हारे योग्य लड़की नहीं?

मैं—हज़ारों हैं। परन्तु चुन किस तरह लूँ? इन सैकड़ों, हज़ारों लड़कियों में कौन मुझे हमेशा प्यार करेगी? यह किस तरह समझूँगा?

सं०—मेरी एक विद्या है। अगर पृथ्वी में इस तरह की कोई हो जो तुम्हें दिल से प्यार करती है तो स्वप्न में मैं उसे दिखा सकता हूँ। परन्तु जो तुम्हें अभी नहीं प्यार करता, भविष्य में करेगी, उसे दिखाना मेरी विद्या से परे है।

मैं—यह विद्या बहुत आवश्यक विद्या नहीं। जो जिसे प्यार करता है, वह उसे प्रायः प्रणय करती हुई जानता है।

सं०—किसने कहा? न जाना हुआ प्रेम ही संसार में अधिक है। क्या तुम्हें कोई प्यार करती है? क्या तुम्हें इसका पता है?

मैं—आत्मीय स्वजन के अलावा और कोई मुझे विशेष रूप से प्यार करती है, यह मुझे नहीं मालूम।

सं०—तुम हम लोगों की विद्या कुछ प्रत्यक्ष करना चाहते थे, आज यह इतनी प्रत्यक्ष करो।

मैं—कोई हानि नहीं।

सं०—तो सोते वक़्त मुझे शय्यागृह में बुलाना।

मेरा शय्यागृह बाहरवाले कमरे में है। मैंने सोते वक़्त सन्यासी को बुलाया। संन्यासी ने आकर मुझसे लेटने के लिए कहा। मेरे लेटने पर उन्होंने कहा, "जब तक मैं यहाँ रहूँगा, आँखें खोलकर न देखना। मेरे जाने पर अगर जगते रहो तो देखना। अस्तु मैं आँखें मूँदे रहा, संन्यासी ने क्या करामात की, कुछ जान नहीं पाया। संन्यासी के जाने के पहले ही मैं सो गया।

संन्यासी ने कहा था, पृथ्वी में जो स्त्री तुम्हें हृदय से चाहती है, आज उसे ही स्वप्न में देखोगे; स्वप्न देखा सही। गङ्गा के कलकल प्रवाह में रेती है, उसके किनारे पानी में आधी डूबी कौन ?

"रजनी"

दूसरे दिन सुबह संन्यासी ने पूछा, "किसे स्वप्न में देखा था ?"

मैं—अन्धी फूलवाली को।

सं०—अन्धी ?

मैं—जन्मान्ध।

सं०—आश्चर्य है। परन्तु कुछ भी हो, उससे अधिक पृथ्वी में और कोई तुम्हें नहीं प्यार करता।

मैं—चुप हो रहा।

चतुर्थ खण्ड

सबकी बात

पहला परिच्छेद

लवङ्गलता की बात

बड़ा गुल मचा। मैं तो संन्यासी महाशय के हाथ-पैर पकड़ कर रो-धोकर शचीन्द्र को वशीभूत करने का उपाय कर रही हूँ। सन्यासी तन्त्रसिद्ध हैं; जगदम्बा की कृपा से जो कुछ मन में लाते हैं, कर सकते हैं। मित्र महाशय साठ साल की उम्र में इस अधम स्त्री के जो इतने वशीभूत हैं, यह मेरे गुण से या संन्यासी महाराज के गुण से यह कहना मुश्किल है; मैं मनसा-वाचा-कर्मणा पति की चरण-सेवा में त्रुटि नहीं होने देती, ब्रह्मचारी भी मेरे लिए याग-यज्ञ, तन्त्र-मन्त्र-प्रयोग की त्रुटि नहीं होने देते। जिसके लिए जो कुछ उन्होंने किया है, वह फलीभूत हुआ है। लोहार की स्त्री की पीतल की हथोड़ी उन्होंने सोने की कर दी। वे क्या नहीं कर सकते! उनके मन्त्र और दवा के गुण से शचीन्द्र जो रजनी को प्यार करेगा— रजनी से ब्याह करना चाहेगा, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं; परन्तु फिर भी अड़चन पड़ी है। अड़चन अमरनाथ ने डाली है। अब सुन रही हूँ, अमरनाथ के साथ ही रजनी का ब्याह तय हुआ है।

रजनी की मौसी, मौसिया, राजचन्द्र और उसकी स्त्री हमारे तरफ़दार हैं। इसका कारण है, मालिक ने कहा है, विवाह अगर होगा तो तुम लोगों को विवाह रचाने के लिए कुछ देंगे। बात विवाह रचाने की छोटी-सी है, पर बिदाई दस हज़ार के क़रीब है। परन्तु वे

हमारी तरफ़ हैं, तो भी कुछ नहीं हो रहा। अमरनाथ छोड़ नहीं रहा। वह अवश्य रजनी से ब्याह करेगा, ज़िद पकड़ा है।

अच्छा, अमरनाथ कौन है? लड़की का ब्याह देनेवाले हैं उसके मौसी-मौसिया—माँ-बाप ही कहना चाहिए—राजचन्द्र और उसकी स्त्री; वे अगर हमारी तरफ़ हैं तो अमरनाथ की ज़िद से क्या आता जाता है? उसने उन लोगों को सम्पत्ति दिलाई है ज़रूर, परन्तु इसका मेहनताना दो-चार हज़ार रुपया मिलने पर चल जायगा। अपने लड़के की बहू बनाने के लिए जिस लड़की से मैं सम्बन्ध कर रही हूँ, उससे अमरनाथ शादी करना चाहता है? अमरनाथ की इतनी बड़ी स्पर्धा! मैंने एक बार अमरनाथ को कुछ शिक्षा दी है—न हो, एक बार और दूँगी। मैं अगर कायस्थ की लड़की हूँगी तो अमरनाथ से इस लड़की को छीनकर अपने लड़के से ब्याहूँगी।

मैं अमरनाथ के सब गुण जानती हूँ। अमरनाथ बड़ा धूर्त है। उसके साथ लड़ाई में सतर्क होकर काम करना पड़ता है। मैंने सतर्क होकर ही काम करना शुरू किया।

पहले राजचन्द्र दास की स्त्री को बुला भेजा। उसके आने पर पूछा, "क्यों री माली-बहू!" राजचन्द्र की स्त्री को हम लोग आज भी माली-बहू कहते हैं, बिना ग़ुस्सा आये नहीं कहते थे, ग़ुस्सा आने पर ही माली-बहू कहते थे। माली-बहू ने जवाब दिया, "क्या है जी?"

मैं—लड़की की शादी सुना अमरनाथ बाबू से करनेवाली हो?

माली-बहू—वही बात तो अभी हो रही है।

मैं—क्यों हो रही है? हमारे साथ क्या बात हुई थी?

माली-बहू—क्या करूँ माँ? मैं औरत की ज़ात, इतनी बातें क्या जानूँ?

इस औरत की मोटी अक़्ल देखकर मुझे बड़ा ग़ुस्सा आया। मैंने कहा—"सो क्या, माली-बहू? औरत नहीं जानती तो क्या मर्द

जानता है ? मर्द संसार-धर्म और नाते-रिश्ते की बातें क्या जाने ? मर्द सर पर लादकर रुपया ले आ देगा, बस, मर्द क्या कर्ता भी है ?

जान पड़ता है, औरत की मोटी अक़्ल में मेरी बातें असङ्गत मालूम दीं—वह कुछ हँसी। मैंने कहा, "तुम्हारे पति का क्या मत है, अमरनाथ के साथ लड़की का ब्याह करेंगे ?"

माली-बहू ने कहा, "उनका मत नहीं, लेकिन अमरनाथ बाबू से ही रजनी को सम्पत्ति मिली है, उनके अधीन होना ही पड़ता है।"

मैं—तो अमरनाथ बाबू से जाकर कहो, सम्पत्ति रजनी को अभी नहीं मिली। सम्पत्ति हमारी है; सम्पत्ति हम लोग नहीं छोड़ेंगे। हो सके तो तुम लोग मुक़दमे से सम्पत्ति ले लो जाकर।

माली-बहू—यह बात पहले भी कह सकती थीं। अब तक मुक़दमा दायर हो गया होता।

मैं—मुक़द्दमा करना मुँह की बात नहीं। रुपये की सराध है। राजचन्द्र दास ने फूल बेचकर कितना रुपया कमाया है ?

माली-बहू गुस्से से गुनगुनाने लगी। सच कह रही हूँ, मुझे कुछ भी क्रोध नहीं आया। माली-बहू ने कुछ गुस्सा रोककर कहा, "अमर बाबू मेरे जामाता हो जायँगे तो सम्पत्ति अमर बाबू की होगी। वे रुपये देकर मुक़दमा कर सकते हैं, उनकी ऐसी शक्ति है।"

यह कहकर माली-बहू उठने को थी, मैंने उसका आँचल पकड़कर उसे बैठाया। माली-बहू हँसकर बैठी। मैंने कहा, "अमर बाबू मुक़दमा करके सम्पत्ति ले लेंगे तो तुम्हारा कौन-सा उपकार है ?"

माली-बहू—मेरी लड़की को सुख होगा।

मैं—और मेरे लड़के के साथ तुम्हारी लड़की का ब्याह होने पर शायद बड़ा दुःख होगा ?

माली-बहू—ऐसा क्यों ? हाँ, जहाँ भी रहे, मेरी लड़की सुखी रहे, बस।

मैं—तुम्हें अपने लिए कुछ सुख नहीं चाहिए ?

माली-बहू—हमारा कौन-सा सुख ? लड़की के सुख से ही हमारा सुख है।

मैं—ब्याह रचाना ?

माली-बहू मुसकुराई। कहा, असली बात बताऊँ मा जी ? यहाँ शादी करने में लड़की का मत नहीं।

मैं—यह कैसी बात ? क्या कहती है ?

माली-बहू—यहाँ की बात उठने पर कहती है, अन्धी के ब्याह की ज़रूरत क्या है ?

मैं—और अमरनाथ से ब्याह की बात चलने पर ?

माली-बहू—कहती है, उन्हीं से हमारा सब कुछ है। वे जो कुछ कहते हैं, वही करना होगा।

मैं—लेकिन विवाह में लड़की का मतामत क्या है। माँ-बाप का मतामत होने से ही हुआ।

माली-बहू—रजनी बच्ची तो है नहीं और मेरी अपनी लड़की भी नहीं, और सम्पत्ति उसकी है, हमारी नहीं। वह हम लोगों की बात न मानेगी तो हम क्या कर सकते हैं ? बल्कि उसका मन रखकर ही हमें इस समय चलना पड़ रहा है।

मैंने सोच-विचार कर पूछा—"रजनी के साथ अमरनाथ की मुलाक़ात होती है ?"

माली-बहू—नहीं, अमर बाबू मुलाक़ात नहीं करते।

मैं—मेरे साथ एक बार रजनी की मुलाक़ात हो सकती है ?

माली-बहू—मेरी भी यही इच्छा है। आप अगर उसे समझा-बुझा कर उसका मत बदल सकें ! आप पर रजनी की सविशेष श्रद्धा भक्ति है।

मैं—अच्छा, कोशिश करके देखूँगी। लेकिन रजनी से मुलाक़ात किस तरह होगी ? कल उसे इस मकान में एक दफ़ा भेज सकती हो ?

माली-बहू—उसके लिए रोक क्या है, वह तो इसी मकान में खा-पीकर पली है। परन्तु जिसके विवाह का सम्बन्ध हो रहा है, उसे क्या अपनी ससुराल, ऐसे समय, विवाह से पहले, जाना चाहिए ?

अरी मर ! क्या करूँ, दूसरा उपाय न देखकर मैंने कहा, "अच्छा, रजनी न आ सके तो क्या मैं एक दफ़ा तुम्हारे मकान जा सकती हूँ ?"

माली-बहू—वह क्या ! हमारे क्या ऐसे सौभाग्य होंगे कि आपके पैरों की धूल हमारे घर पड़ेगी ?

मैं—नातेदारी होने पर मेरी क्यों, बहुतों की पड़ेगी। तुम मुझे आज न्यौता दे जाओ।

माली-बहू। लेकिन हमारे मकान आपको भेजने की मालिक राय क्यों देंगे ?

मैं—मर्द का क्या मत और क्या अमत ? औरत का जो मत है, वही मर्द का है।

माली-बहू हाथ जोड़कर न्यौता देकर हँसती हुई बिदा हुई।

दूसरा परिच्छेद

अमरनाथ की कथा

रजनी की सम्पत्ति के उद्धार के लिए मेरा इतना कष्ट सफल हुआ है, मित्रों ने भी बिना किसी तकरार के सम्पत्ति छोड़ दी है, फिर भी उस पर दख़ल नहीं किया गया, यह सुनकर बहुत-से आदमी चौंक सकते हैं। इससे मुझे भी कुछ विस्मय है। सम्पत्ति मेरी नहीं। मैं दख़ल लेनेवाला कोई नहीं। जायदाद रजनी की है, उसके दख़ल न लेने पर कौन ले सकता है ? रजनी सम्पत्ति पर अधिकार करने के लिए किसी

तरह सम्मत नहीं। कहती है, आज नहीं, दो दिन और रहे, बाद को दख़ल किया जायगा आदि आदि। दख़ल न ले, लेकिन दरिद्र की कन्या की ऐश्वर्य में इतनी अनास्था क्यों है, यह बहुत सोच-विचार कर भी मैं ठीक नहीं कर सकता। राजचन्द्र और राजचन्द्र की स्त्री ने भी इस विषय में रजनी से अनुरोध किया है, परन्तु सम्पत्ति पर फ़िलहाल रजनी अधिकार नहीं करना चाहती। इसका क्या मतलब है? किसके लिए इतनी मेहनत की?

कुछ हो, इसका एक चूड़ान्त निश्चय करने के लिए मैं रजनी से मुलाक़ात करने गया, रजनी के साथ मेरे विवाह की बातचीत उठने के समय से मैं रजनी से मिलने बहुत-एक नहीं जाता था—क्योंकि अब मुझे देखने पर रजनी कुछ लज्जिता होती थी। परन्तु आज बिना गये नहीं बन पड़ता। उस मकान में मेरा द्वार सदा खुला है। रजनी की खोज में उसके घर जाकर मैंने उसे नहीं देखा। लौट रहा हूँ, ऐसे समय देखा, रजनी एक दूसरी स्त्री के साथ ज़ीना चढ़ रही है। उस औरत को देखते ही मैं पहचान गया—बहुत दिन नहीं देखा परन्तु देखते ही पहचान लिया कि वह गजेन्द्रगामिनी लवङ्गलता है।

रजनी इच्छा से फटी धोती पहने थी—लाज के मारे वह लवङ्गलता से अच्छी तरह बात नहीं कर रही थी। लवङ्गलता हँसी से छलक रही थी, ग़ुस्सा या द्वेष का कोई लक्षण नहीं देख पड़ा।

वह हँसी बहुत दिन नहीं सुनी। वह हँसी वैसी ही थी—पौर्णमासी के समुद्र में छोटी तरङ्ग की तरह, पुष्पित वसन्तलता के आन्दोलन की तरह, उससे सुख खुल खुलकर गिर रहा था।

मैं अवाक् होकर निस्पन्द शरीर से सशङ्क चित्त से इस विचित्र-चरित्रा रमणी की मानसिक शक्ति की आलोचना कर रहा था। लवङ्गलता किसी तरह भी नहीं डिगती! लवङ्गलता महान् ऐश्वर्य से दारिद्र्य में पड़ी है, फिर भी वही सुखमयी हँसी है। जिस रजनी से यह घोर विपत्ति हुई है, उसी के घर आकर ज़ीना चढ़ रही है, उससे बातचीत

कर रही है, फिर भी वही सुखमयी हँसी है ! मैं सामने हूँ, फिर भी वही सुखमयी हँसी है ! अथच मैं जानता हूँ, लवङ्ग कोई बात नहीं भूली।

मैं हटकर बग़लवाले कमरे में गया। लवङ्गलता पहले उसी कमरे में गई—निःशङ्क चित्त से आज्ञादायिनी राजराजेश्वरी की तरह रजनी से कहा, "रजनी, तू इस वक़्त और कहीं जा ! तेरे वर के साथ मेरी एकान्त में कुछ बातचीत है। डर मत ! तेरा वर सुन्दर होने पर भी मेरे वृद्ध पति से सुन्दर नहीं।" रजनी अप्रतिभ होकर न जाने क्या सोचती हुई चली गई।

ललित लवङ्गलता भौंहें टेढ़ी कर, वही मधुर हँसी हँसकर, इन्द्राणी की तरह मेरे सामने आ खड़ी हुई, एक दफ़े के सिवा अमरनाथ को किसी ने आत्म-विस्मृत नहीं देखा; मैं फिर आत्म-विस्मृत हुआ। उस दफ़े भी ललित लवङ्गलता थी, इस दफ़े भी ललित लवङ्गलता है।

लवङ्ग ने हँस कर कहा, "मेरे मुँह की ओर टकटकी लगाये क्या देख रहे हो ? तुम्हारा अर्जित ऐश्वर्य छीन लेने आई हूँ या नहीं ? अगर चाहूँ तो ऐसा कर सकती हूँ।"

मैंने कहा, "तुम सब कर सकती हो, परन्तु इतना नहीं कर सकतीं; अगर कर सकतीं तो रजनी को सम्पत्ति देकर अब अपने हाथ खा पकाकर सौत को खिलाने का इन्तज़ाम न करतीं।

खिलखिलाकर हँसकर लवङ्ग ने कहा, "शायद यह सोच रहे हो कि वह मुझे पसन्द नहीं ? सौत के लिए भोजन पकाना होगा, यह बड़े दुःख की बात है ज़रूर, लेकिन एक पहरेवाले को बुलाकर तुम्हें पकड़ा देने पर अभी फिर पाँच रसोइए रख सकती हूँ।"

मैंने कहा, 'सम्पत्ति रजनी की है मुझे पकड़ा देने पर क्या होगा ? जिसकी सम्पत्ति है, वह अधिकार किये रहेगी।"

लवङ्ग०—तुम कभी औरत को पहचान न सके ! रजनी जिसे प्यार करती है, उसकी रक्षा के लिए अभी सम्पत्ति छोड़ देगी।

मैं—अर्थात् मेरी रक्षा के लिए सम्पत्ति तुम्हें रिश्वत देगी ?

लवङ्ग०—यह बात।

मैं—तो इतने दिन रिश्वत नहीं माँगी इसलिए हमारा विवाह नहीं हुआ। विवाह हो जाने पर वह रिश्वत माँगोगी

लवङ्ग०—तुम्हारी तरह का बुद्धिहीन किस तरह समझेगा? चोर यह नहीं समझते कि दूसरे की चीज़ अस्पृश्य है। रजनी की सम्पत्ति रख सकने पर भी मैं क्यों रक्खूँगी?

मैंने कहा—"तुम अगर ऐसी नहीं होगी तो मेरी यह मरनवाली दुर्बुद्धि क्यों होगी? अगर मेरे इतने अपराध तुमने क्षमा किये हैं, इतनी कृपा की है, तो एक और भीख है। जो कुछ जानती हो, अगर दूसरे से नहीं कहा तो रजनी से भी न कहना।"

दर्पिता लवङ्गलता की भौंहों में बल पड़ गये—कितनी सुन्दर भ्रूभङ्गिमा। कहा, "मैं क्या धोखेबाज़ हूँ, जो तुम्हारी स्त्री होगी उसकी निगाह से तुम्हें गिराने के लिए क्या मैं उसके यहाँ आई हूँ?"

यह कहकर लवङ्गलता हसी। उसकी हँसी का मर्म मैं कभी कुछ समझ नहीं सका। लवङ्ग गुस्से में आ गई थी, लेकिन हँसी से उसका गुस्सा जाता रहा, जैसे पानी के ऊपर से बादल की छाँह हट गई, उस पर मेघमुक्त चन्द्र की ज्योत्स्ना पड़ी; मैं लवङ्गलता का मर्म कभी समझ नहीं सका।

लवङ्ग ने हँसकर कहा, "तो मैं रजनी के पास जाऊँ?"

"जाओ।"

ललित लवङ्गलता ललित लवङ्गलता की तरह झूमती हुई चली। कुछ देर बाद मुझे बुला भेजा। जाकर देखा, लवङ्गलता खड़ी है। रजनी उसके पैरों पर हाथ रखकर रो रही है। मेरे जाने पर लवङ्गलता ने कहा, "सुनो, तुम्हारी भविष्य की स्त्री क्या कह रही है! तुम्हारे सामने न कही तो ऐसी बात मैं कानों से नहीं सुनूँगी।"

मैंने आश्चर्य में पड़ कर पूछा, "क्या?"

लवङ्गलता ने रजनी से कहा, "कहो, तुम्हारा वर आया हुआ है—"

रजनी ने बड़ी व्याकुलता से आँखों में आँसू भर कर लवङ्गलता का चरणस्पर्श करके कहा, "मेरी यह भीख है, मेरी जो कुछ सम्पत्ति है, इन बाबू के प्रयत्न से मेरी जो सम्पत्ति उद्धृत हुई है, मैं लिखकर आपको दान करूँगी, क्या आप ग्रहण नहीं करेंगी ?"

आह्लाद से मेरा सर्वान्तःकरण प्लावित हो गया। मैंने रजनी के लिए जो प्रयत्न किया था, वह सार्थक हुआ मालूम दिया। मैंने पहले ही समझा था, अब और साफ़ तौर से समझा कि रमणी-कुल में अन्धी रजनी अद्वितीय रत्न है। लवङ्गलता की उज्ज्वल ज्योति भी उसके सामने मलिन पड़ गई। मैंने इससे पहले ही रजनी के अन्ध-नयनों को आत्म-समर्पण किया था, आज उसके हाथ बिना दाम बिक गया। इस अमूल्य रत्न से अपनी अन्धकारपुरी को प्रकाशित करके यह जीवन सुख से बिताऊँगा। विधाता क्या मेरे लिए वह दिन नहीं लायेंगे ?

तीसरा परिच्छेद

लवङ्गलता की कथा

मैंने सोचा था, रजनी की ताज्जुब में डालनेवाली बात सुन कर अमरनाथ सेंके हुए केले के पत्ते की तरह मुरझा जायगा, लेकिन ऐसा तो कुछ नहीं देखा। उसका मुख सूखने की जगह प्रफुल्ल हो गया। विस्मित, हतबुद्धि, जो कुछ होने को मैं हुई।

मैं पहले झूठ समझती थी, किन्तु रजनी की कातरता, आँसू बहाना और दृढ़ता देखकर मेरा विश्वास दृढ़ हो गया कि रजनी दिल से कह

रही है। मैंने कहा, "कायस्थ के कुल में तुम धन्य हो! तुम्हारी तरह कोई नहीं। परन्तु मैं तुम्हारा दान ग्रहण नहीं करूँगी।"

रजनी ने कहा, "नहीं लेंगी तो मैं दूसरे को दे दूँगी।"

मैं—अमरनाथ बाबू को?

रजनी—आप उन्हें अच्छी तरह नहीं पहचानतीं, मेरे देने पर भी वे नहीं लेंगे। लेने के लिए और आदमी हैं।

मैं—अमरनाथ बाबू! आप क्या कहते हैं?

अमर०—मुझसे कोई बात नहीं हो रही, मैं क्या कहूँगा?

मैं बड़े असमञ्जस में पड़ी। रजनी सम्पत्ति छोड़ रही है, इससे मुझे आश्चर्य हुआ; उधर जिस सम्पत्ति को निकालने में अमरनाथ ने इतना किया था, वह हाथ से जा रही है, देखकर भी वह प्रफुल्ल है; बात क्या है?

मैंने अमरनाथ से कहा, "यदि तुम दूसरी जगह जाओ, तो मैं रजनी से कुल बातें खुलकर पूछूँ।" अमरनाथ उसी वक़्त हट गया। तब मैंने रजनी से कहा, "तुम क्या सचमुच ही सम्पत्ति दे दोगी?"

"सचमुच। मैं गङ्गाजल लेकर शपथ करके कहती हूँ।"

मैं—मैं तुम्हारा दान लूँगी अगर तुम भी मेरा कुछ दान लो।

रजनी—बहुत लिया है।

मैं—और भी कुछ लेना होगा।

रजनी—एक धोती उतारी हुई दीजिएगा।

मैं—यह नहीं। मैं जो दूँ, वही लेना होगा।

रजनी—क्या दीजिएगा?

मैं—शचीन्द्र नाम का मेरा एक लड़का है। मैं तुम्हें शचीन्द्र का दान करूँगी। पति के रूप से तुम ग्रहण करना। तुम यदि उसे ग्रहण करो तो मैं तुम्हारी सम्पत्ति ले सकती हूँ।

रजनी खड़ी थी, धीरे धीरे बैठकर अन्धी आँखें मूँद लीं। इसके बाद उसकी मुँदी आँखों से अविरल जल-धारा गिरने लगी। आँसू

रुकते ही नहीं थे। मैं बड़ी विपत् में पड़ी। रजनी बोलती नहीं, केवल रोती है। मैंने पूछा, "क्यों रजनी, इतना रोती क्यों हो?"

रजनी रोती हुई बोली, "उस दिन गङ्गा में मैं डूब मरने गई थी, डूबी थी, लोगों ने पकड़ कर निकाल लिया यह शचीन्द्र के लिए। तुम अगर कहतीं तुम अन्धी हो, तुम्हारी आँखें खोलवा दूँगी, तो मैं यह न चाहती—मैं शचीन्द्र को चाहती। शचीन्द्र से बढ़कर इस संसार में और कुछ नहीं, मेरे प्राण उनके पास हैं, देवता के पास केवल एक कली जैसे, श्रीचरणों में स्थान मिलने पर ही सार्थक हूँगी। अन्धी के दुख की कथा क्या सुनिएगा?"

रजनी की व्याकुलता देखकर व्याकुल होकर मैंने कहा, "सुनूँगी।"

तब रजनी रोती हुई हृदय खोल कर मुझसे कुल बातें बतलाने लगी। शचीन्द्र का कण्ठ, शचीन्द्र का स्पर्श, अन्धी का रूपोन्माद! उसका भगना, डूबना, उद्धार, सब कहा। कहकर पूछा, "माँ जी, तुम्हारे आँखें हैं, आँखें रहने पर इतना प्यार क्या किया जा सकता है?"

मन ही मन कहा, "अन्धी! प्यार का हाल तू क्या जानती है? तू लवङ्गलता से हज़ार गुना ज़्यादा सुखी है।" खुलकर कहा, "नहीं, रजनी, मेरे बुड्ढे पति हैं मैं इतना यह कुछ नहीं जानती। तो यह निश्चित है कि तुम शचीन्द्र से ब्याह करोगी?"

रजनी ने कहा, "नहीं।"

मैं—वह क्या? तो इतनी बातें क्या कह रही थीं?—इतना रोईं क्यों?

रजनी—मेरे भाग्य में वह सुख नहीं है, इसी लिए इतना रोई।

मैं—सो क्या? मैं ब्याह करा दूँगी।

रजनी—करा नहीं सकेंगी। अमरनाथ से मेरा सर्वस्व है। अमरनाथ ने मेरी सम्पत्ति के उद्धार के लिए जितना किया है, दूसरे के लिए

कोई इतना करता है ? यह भी नहीं लेती, उन्होंने अपनी जान देकर मेरी जान बचाई है।

वह हाल रजनी ने कहा। बाद को कहा, "जिनके पास मैं इतनी ऋणी हूँ, वे मेरे लिए जो कुछ कहेंगे वही होगा। उन्होंने जब अनुग्रह करके मुझे दासी बनाने के लिए कहा है तब मैं उन्हीं की दासी हूँगी, और किसी की नहीं।"

राम राम ! क्यों संन्यासी से इस मैंने दवा दिलाई ? विवाह के बिना भी सम्पत्ति रहती है—रजनी तो अभी सम्पत्ति देना चाहती है। परन्तु छिः ! रजनी का दान लूँगी ? भीख माँगकर खाऊँगी, वह भी अच्छा है। मैंने कहा है, मैं अगर, यह ब्याह न करा दूँ, मैं कायस्थ की लड़की नहीं। मैं यह ब्याह ख़ुद-ब-ख़ुद कराऊँगी। मैंने रजनी से कहा, "तो मैं तुम्हारा दान नहीं लूँगी। तुम्हारी जिसे इच्छा, उसे दान करना। मैं उठी।"

रजनी ने कहा, "एक दफ़ा और बैठिए। मैं अमरनाथ बाबू से एक दफ़ा अनुरोध कराऊँगी। उन्हें बुलाती हूँ।"

अमरनाथ बाबू के साथ एक दफ़ा और मुलाक़ात हो, मेरी भी इच्छा है। मैं फिर बैठी। रजनी ने अमरनाथ बाबू को बुलाया।

अमरनाथ आये। मैंने रजनी से कहा, "अमरनाथ बाबू इस विषय में अगर अनुरोध करना चाहेंगे तो क्या कुल बातें तुम्हारे सामने खुल कर कह सकेंगे ? अपनी तारीफ़ आप खड़ी होकर न सुनो।"

रजनी हट गई।

चौथा परिच्छेद

लवङ्गलता की कथा

मैंने अमरनाथ से पूछा, "तुम रजनी से ब्याह करोगे?"

अ०—करूँगा, निश्चित है।

मैं—अभी निश्चित है? अपनी सम्पत्ति तो रजनी मुझे दे रही है।

अ०—मैं रजनी से ब्याह करूँगा, उसकी सम्पत्ति से नहीं।

मैं—सम्पत्ति के लिए ही तो रजनी से ब्याह करना चाहा था?

अ०—औरतों का मन ऐसा ही बुरा होता है।

मैं—हम लोगों से इतनी नफ़रत कितने दिनों से हुई?

अ०—नफ़रत नहीं, होती तो फिर से ब्याह करना न चाहता।

मैं—लेकिन (चुनकर) अन्धी लड़की को इतना प्यार क्यों किया? इसी लिए सम्पत्ति की बात कह रही थी।

अ०—तुम बुड्ढे से क्यों इतना प्रेम करती हो? सम्पत्ति के लिए?

मैं—किसी के सामने उसके पति को बुड्ढा नहीं कहना चाहिए। मुझसे ग़ुस्सा क्यों? क्या तुम मुखरा स्त्री के मुँह से नहीं डरते?

(परन्तु ग़ुस्सा हो, यह मेरी भीतरी इच्छा है)

अमरनाथ ने कहा, "डरता ज़रूर हूँ। ग़ुस्से की बात कुछ नहीं कही। तुम जिस तरह मित्र महाशय को प्यार करती हो, मैं उसी तरह रजनी को करता हूँ।"

मैं—कटाक्ष के कारण?

अ०—नहीं, कटाक्ष नहीं, इसलिए; तुम भी अन्धी होतीं तो और सुन्दरी होतीं।

मैं—यह बात मित्र महाशय से पूछूँगी, तुमसे नहीं। फ़िलहाल जिस तरह तुम रजनी को प्यार करते हो, उसी तरह मैं भी करती हूँ।

अ०—तुम भी रजनी से ब्याह करना चाहती हो क्या?

मैं—हाँ। मैं ख़ुद उससे ब्याह न करूँ, उसका अच्छा विवाह करना चाहती हूँ। तुमसे उसका ब्याह नहीं होने दूँगी।

अ०—मैं सुपात्र हूँ, रजनी के लिए ऐसा मिल नहीं रहा।

मैं—तुम कुपात्र हो, मैं सुपात्र ला दूँगी।

अ०—मैं क्यों कुपात्र हूँ?

मैं—कमीज़ चढ़ाकर पीठ निकालो, देखूँ।

अमरनाथ का मुँह सूख गया! बहुत दुःखित होकर कहा, "छिः लवङ्ग!"

मुझे भी दुःख हुआ, परन्तु दुःख से मैं भूली नहीं। कहा, "एक कहानी कहूँगी, सुनोगे?"

मैं बात दबा रही हूँ, सोचकर अमरनाथ ने कहा, "सुनूँगा।"

मैं तब कहने लगी, "पहली जवानी में लोग मुझे सुन्दरी कहते थे।"

अ०—यह अगर कहानी है तो सच क्या है?

मैं—बाद को, सुनो, वह रूप देखकर एक चोर ने मुग्ध होकर, मैं अपने नैहर में एक नौकरानी के साथ जिस कमरे में सो रही थी, उसमें सेंध लगाई।

यह बात कहनी शुरू की तो अमरनाथ पसीने-पसीने हो गया। कहा, "क्षमा करो।"

मैं कहने लगी, "वह चोर सेंध के रास्ते मेरे कमरे में आया। कमरे में दीया जल रहा था। मैं चोर को पहचान गई। डरकर नौकरानी को जगाया। वह चोर को पहचानती नहीं थी। मैंने तब लाचार होकर चोर को आदर देकर आश्वस्त करके पलंग पर बैठाला।"

अ०—माफ़ करो, वह तो सब जानता हूँ।

मैं—फिर भी एक बार याद दिला देना अच्छा है। कुछ देर बाद, चोर के बिना जाने, मेरे सङ्केत के अनुसार नौकरानी बाहर जाकर दरबान को बुला सेंध के मुँह पर खड़ी रही। मैं भी समय समझकर

बाहर के प्रयोजन का बहाना करके निकली और एकमात्र द्वार की साँकल चढ़ा दी। क्या बुरा किया था ?

अमरनाथ ने कहा, "ये सब बातें क्यों ?"

मैं—बाद को चोर निकला किस तरह, बताओ भला ? बुलाकर टोले के आदमी इकट्ठे किये। बड़े बड़े बली आये और चोर को उन्होंने पकड़ा। चोर लज्जा से मुँह छिपाये रहा। मैंने दया करके उसके मुँह का कपड़ा नहीं हटाया, लेकिन अपने हाथ से लोहे की तपी छड़ से उसकी पीठ में लिखा था—

" चोर "

अमर बाबू, बहुत गर्मी में भी क्या आप बदन का कपड़ा उतार कर नहीं सोते ?

अ०—नहीं।

मैं—लवङ्गलता के हस्ताक्षर मिटने के नहीं। मैं रजनी को बुलाकर यह कहानी सुना जाऊँ इच्छा थी, लेकिन नहीं सुनाऊँगी। तुम रजनी के योग्य नहीं हो। रजनी से ब्याह करने की कोशिश न करना। यदि हाथ नहीं खींचोगे तो मैं सुनाने को मजबूर हूँगी।

अमरनाथ कुछ देर सोचते रहे। बाद को दुःखित भाव से कहा, "सुनाना हो तो सुनाना; तुम सुनाओ या न सुनाओ, मैं स्वयं आज उसे सब सुनाऊँगा। मेरे दोष, गुण सब सुनकर रजनी मुझे ग्रहण करना चाहेगी, करेगी, न करना होगा, न करेगी। मैं उससे प्रवञ्चना नहीं करूँगा।"

मैं हँसकर मन-ही-मन अमरनाथ को सैकड़ों धन्यवाद देती हुई हर्ष-विषाद से घर लौट आई।

पाँचवाँ परिच्छेद

शचीन्द्र की बात

सम्पत्ति खोकर कुछ दिनों बाद मैं बीमार पड़ गया। ऐश्वर्य से दारिद्र्य में पड़ने की शङ्का हुई, इससे मन में कोई विकार आगया, पीड़ा पैदा हुई। इसके कहने की कोई ज़रूरत नहीं, सिर्फ़ पीड़ा के लक्षण कहूँगा।

शाम से पहले धूप की गर्मी घट जाने पर कोठी के ऊपर बैठा पढ़ रहा था, दिन भर पढ़ता रहा था। संसार के दुरूह गूढ़ तत्त्वों की आलोचना कर रहा था। किसी का मर्म नहीं समझ में आया, साथ ही शङ्का की निवृत्ति नहीं होती थी; जितना ही पढ़ता था, पढ़ने की साध होती थी। अन्त में थकान मालूम दी। किताब बन्द कर हाथ में लेकर सोचने लगा। कुछ नींद आई, फिर भी वह नींद नहीं थी; वह मोह था, नींद की तरह सुखकर था तृप्ति देनेवाला नहीं था। थके हाथों से किताब छूट पड़ी। आँखें खोले हुए था, बाहरी वस्तुएँ दिख रही थीं, परन्तु क्या देख रहा हूँ, यह कह नहीं सकता था। एकाएक वहाँ सुबह की तरङ्गों से चपल, कल-कल नाद करती हुई चौड़ी नदी देखी; जैसे वहाँ ऊषा के उज्ज्वल वर्ण से पूर्व दिशा प्रभासित हो रही है; देखा, गङ्गा के उस प्रवाह में, सिकता के किनारे, रजनी है; रजनी पानी में पैठ रही है; धीरे धीरे, पानी में उतर रही है; धीरे धीरे धीरे, अन्धी है अथच भौंहें कुञ्चित; विकल है अथच स्थिर; प्रभात में शान्ति से शीतल उस भागीरथी की तरह गम्भीर, धीर; भागीरथी की तरह अन्तर से दुर्जय वेगवाली; धीरे धीरे धीरे, पानी में उतर रही है। देखा, कितनी सुन्दर!—रजनी कितनी सुन्दरी है! पेड़ से नई मञ्जरी की सुगन्ध की तरह, दूर से सुनाई पड़नेवाले सङ्गीत के अन्तिम अंश की तरह रजनी धीरे धीरे धीरे पानी में उतर रही है! धीरे,

रजनी धीरे ! मैं तुम्हें देखूँ । तब अनादर करके नहीं देखा, इस समय एक बार अच्छी तरह देख लूँ । धीरे, रजनी, धीरे !

मैं मूच्छित हो गया । मूर्च्छा के कुल लक्षणों का हाल मुझे नहीं मालूम । बाद को जो कुछ सुना है, उनके कहने की आवश्यकता नहीं । मैं जब होश में आया तब रात थी—मेरे पास बहुत-से आदमी थे । परन्तु मैंने वह सब कुछ नहीं देखा । मैंने देखा, वही मृदुनादिनी गङ्गा हैं, और मृदुगामिनी रजनी धीरे धीरे धीरे पानी में उतर रही है । ऊपर को देखा, ऊपर भी आकाशविहारिणी गङ्गा धीरे धीरे धीरे बह रही हैं और आकाशविहारिणी रजनी धीरे, धीरे, धीरे उतर रही है । दूसरी तरफ़ मन फेरा, फिर भी वही गङ्गा और वही रजनी ! मैं निरस्त हुआ । चिकित्सक मेरी चिकित्सा करने लगे ।

काफ़ी दिनों तक मेरी यह चिकित्सा हुई, परन्तु मेरी आँखों के सामने से रजनी का रूप एक क्षण के लिए भी अन्तर्हित नहीं हुआ । मैं नहीं जानता, किस रोग की चिकित्सक मेरी चिकित्सा कर रहे थे । मेरी आँखों के सामने जो रूप दिनरात नाच रहा था, उसकी बात किसी से मैंने नहीं कही ।

छठा परिच्छेद

शचीन्द्र की बात

ऐ, धीरे, रजनी, धीरे ! धीरे धीरे मेरे इस हृदय-मन्दिर में आओ । इतनी जल्दी क्यों चल रही हो ? तुम अन्धी हो, रास्ता नहीं पहचानती, धीरे, रजनी, धीरे ! छोटी-सी यह पुरी है, अँधेरा अँधेरा, सदा अँधेरा है ! दीपशलाका की तरह इसमें आकर प्रकाश

फैलाओ—दीपशलाका की तरह आप जलोगी, लेकिन अँधेरी पुरी का प्रकाशित करोगी।

ऐ, धीरे, रजनी, धीरे! यह पुरी प्रकाशित करो, परन्तु जलाती क्यों हो? कौन जानता है कि ठंडा पत्थर भी जला देगा? तुम्हें तो पत्थर की बनी, पत्थर ही जानता था। कौन जानता था कि पत्थर भी जला देगा? या कौन जानता है कि पत्थर और लोहे के संघर्षण से चिनगारियाँ निकलती हैं? तुम्हारी पत्थर-सी सफ़ेद, पत्थर की तरह देखने में ठंढी, पत्थर की बनी जैसी मूर्ति जितना देखता हूँ, उतना ही देखने की इच्छा होती है। प्रतिदिन, प्रतिपल देखकर भी, मन में होता है, कहाँ देखा? फिर देखूँ। फिर देखता हूँ, परन्तु देखने पर भी तो साध नहीं मिटी।

पीड़ित अवस्था में मैं प्रायः किसी के साथ बात-चीत नहीं करता था। कोई बातें करने आता था तो अच्छा नहीं लगता था। रजनी की बात ज़बान में नहीं लाता था। लेकिन प्रलाप के वक्त क्या कहता था, क्या नहीं, यह याद कर कह नहीं सकता। प्रलाप प्रायः किया करता था।

पलँग प्रायः नहीं छोड़ता था। लेटा हुआ कितना क्या देखता था, कह नहीं सकता। कभी देखता था, मैदानेजङ्ग में यवन मारे गये; ख़ून की नदी बह रही है; कभी देखता था, सोने के प्रान्तर में हीरे के पेड़ों में नक्षत्रों के गुच्छे के गुच्छे खिले हुए हैं। कभी देखता था आकाश-मार्ग में आठ चाँदों से युक्त शनैश्चर महाग्रह चार चक्रवाले बृहस्पति पर बड़े वेग से टूटा—ग्रह और उपग्रह टुकड़े टुकड़े हो गये—आघात से पैदा हुई आग से वे सब जलते हुए बड़े वेग से विश्व-मण्डल के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं। कभी देखता था, यह जगत् ज्योतिर्मय कान्तरूपधर दिव्य योनि की मूर्तियों से परिपूर्ण है; वे अविरत भाव से अम्बर-पथ को प्रभासित करके विचरण कर रही हैं। उनके अङ्ग-सौरभ से मेरे नथने भरे जा रहे हैं, परन्तु जो कुछ भी

देखा, सबके बीच में रजनी की वही प्रस्तरमयी मूर्ति देखने को मिली। हाय! रजनी! पत्थर में इतनी आग है!

धीरे रजनी, धीरे, धीरे, धीरे रजनी, वे अन्धी आँखें खोलो! देखो, मुझे देखो, मैं तुम्हें देखूँ! वह देख रहा हूँ—तुम्हारे नयन-पद्म क्रमशः प्रस्फुटित हो रहे हैं—क्रमशः, क्रमशः, क्रमशः, धीरे, धीरे, धीरे, धीरे नयनराजीव खुल रहे हैं, इस संसार में किसके आँखें नहीं? गाय, भेड़, कुत्ता, बिल्ली, इनके भी आँखें हैं—तुम्हारे नहीं? नहीं, नहीं, तो मेरे भी नहीं। मैं भी अब आँखें नहीं खोलूँगा।

सातवाँ परिच्छेद

लवङ्गलता की कथा

मैं जानती थी, शचीन्द्र कोई शिगूफ़ा खिलायेगा—थोड़ी उम्र में इतना सोचा जाता है! दीदी तो एक दफ़ा आँख उठाकर भी नहीं देखतीं। मैं कहती हूँ तो विमाता समझकर मेरी बात की परवा नहीं करता। ऐसे लड़के से पेश पाना मुश्किल है। अब गरज देखती हूँ, मेरी है। डाक्टर-वैद्य कुछ भी नहीं कर सके, कर भी नहीं सकेंगे। वे रोग का निर्णय ही नहीं करना जानते। रोग हुआ है मन में; देखी नाड़ी, देखी आँखें, देखी जीभ, वे क्या समझेंगे? अगर वे मेरी तरह आड़ में छिपकर लड़के का तमाशा देखते तो एक दिन रोग का पता पाने पर पा सकते थे।

बात क्या है? "धीरे रजनी!" लड़का तो अकेला रहने पर यह एक ही बात कहता है। संन्यासी महाराज की दवा से क्या यह नतीजा हासिल हुआ? अपनी क़िसमत फोड़ने के लिए मैंने क्यों ऐसा किया?

अच्छा, रजनी को एक दफ़ा रोगी के पास बैठा रखने पर नहीं बनता ? कहाँ, मैं तो रजनी के मकान गई थी, वह तो तब से एक दफ़ा भी मेरे घर नहीं आई। बुला भेजने पर बिना आये रह नहीं सकेगी। यह सोचकर मैंने रजनी के घर आदमी भेजा, कहला भेजा कि मुझे ख़ास ज़रूरत है, एक दफ़ा आने के लिए कहना।

मन में किया, पहले एक दफ़ा शचीन्द्र से रजनी की बात उठाकर देखूँ, तो समझ में आ जायगा, रजनी के साथ शचीन्द्र की पीड़ा का कोई सम्बन्ध है या नहीं।

अस्तु, सच्ची बात मालूम करने के लिए शचीन्द्र के पास जाकर बैठी। इस बात उस बात के बाद, छल से रजनी का प्रसङ्ग उठाया। कोई दूसरा वहाँ नहीं था। रजनी का नाम सुनते ही चिरञ्जीव चौंके हंस की तरह गरदन उठाकर मेरे मुँह की ओर देखते रहे। मैं जितना ही रजनी की बात कहने लगी, शचीन्द्र किसी ओर न देखकर व्याकुल आँखों से मेरी ही ओर देखता रहा। लड़का बहुत अस्थिर हो उठा, यह उतारने वह तोड़ने लगा। अन्त में मैं रजनी का भलाबुरा कहने लगी—वह धन की लालचिन है, हमारे पहले के किये उपकार की कुछ भी याद नहीं की। ऐसी बातचीत सुनकर शचीन्द्र कुछ अप्रसन्न हुआ, ऐसा मालूम दिया, परन्तु बातचीत में कुछ ज़ाहिर नहीं हुआ।

निश्चित रूप से समझी, यह संन्यासी की कारंवाई है। इस समय वे दूसरी जगह गये हुए थे, जल्द ही आने की बातचीत थी। उनकी प्रतीक्षा करने लगी। परन्तु साथ ही यह भी सोचने लगी कि वे भी क्या करेंगे, मैं कमअक़्ल बुरी आकांक्षा के वशीभूत होनेवाली स्त्री हूँ—धन के लोभ से आगा पीछा न सोचकर आप ही यह विपत्ति ला खड़ी की है। उस समय मन में जानती थी कि रजनी को वास्तव में पुत्रवधू बनाऊँगी। तब कौन जानती थी कि अन्धी फूलवाली भी दुर्लभ होगी ? कौन जानती थी कि संन्यासी के मन्त्र और ओषधि से हित में अहित होगा ? स्त्री की बुद्धि बहुत खोटी है, यह नहीं जानती

थी; अपनी बुद्धि के अभिमान में आप डूबी। ऐसी बुद्धि होने से पहले मैं मरी क्यों नहीं? अब इच्छा हो रही है कि मरूँ, परन्तु शचीन्द्र को अच्छा देखे बिना नहीं मर सकती।

कुछ दिन बाद कहाँ से वे पहले के परिचित संन्यासी आकर उपस्थित हुए। उन्होंने कहा, शचीन्द्र की पीड़ा का संवाद पाकर वे देखने आये हैं। किसने उन्हें शचीन्द्र की पीड़ा का संवाद दिया, यह नहीं बताया।

शचीन्द्र की पीड़ा की बातें शुरू से अख़ीर तक उन्होंने सुनीं; बाद वे शचीन्द्र के पास बैठकर तरह तरह की बातचीत करने लगे। इसके बाद प्रणाम करने के लिए मैंने उन्हें बुला भेजा। प्रणाम करके कुशल-प्रश्न करने के बाद मैंने पूछा, "महाशय सर्वज्ञ हैं; नहीं जानते ऐसा तत्त्व ही नहीं है। शचीन्द्र को क्या रोग है, यह आप अवश्य जानते हैं।"

उन्होंने कहा, "यह वायुरोग है, मुश्किल से अच्छा होता है।"

मैंने पूछा, "शचीन्द्र सदा रजनी का नाम क्यों लेता है?"

संन्यासी ने कहा, "तुम लड़की हो, क्या समझोगी?"

(क्या आश्चर्य! मैं बालिका हूँ?—मैं शचीन्द्र की माँ!)

"इस रोग की एक गति यह है कि हृदय के छिपे और अपरिचित भाव या प्रवृत्तियाँ ज़ाहिर हो जाती हैं और बड़ी बलवती हो जाती हैं। शचीन्द्र एक दफ़ा हम लोगों की देवविद्या के परीक्षार्थी हुए थे, तब मैंने एक तान्त्रिक अनुष्ठान किया था। उसमें यह था कि शचीन्द्र को जो आन्तरिक प्यार करती है, उसे वे स्वप्न में देखेंगे। रात को शचीन्द्र ने स्वप्न में रजनी को देखा। स्वाभाविक नियम यह है कि जो हमें प्यार करती है अगर हम समझ सकें तो उसके लिए हमारा अनुराग हो जाता है। अस्तु उस रात को शचीन्द्र के मन में रजनी के प्रति अनुराग का बीज एकान्त में समारोपित हो गया। किन्तु रजनी अन्धी है और इतर आदमी की लड़की है, ऐसे कारणों से वह अनुराग

परिस्फुट नहीं हो सका। अनुराग के लक्षण अपने हृदय में कुछ देखने को मिलने पर भी शचीन्द्र ने उन पर विश्वास नहीं किया। क्रमशः तुम लोगों को घोर दारिद्र्य की शङ्का पीड़ित करने लगी। सबसे ज़्यादा शचीन्द्र को ही इसकी व्यथा पहुँची। दारिद्र्य-दुःख भूलने के विचार से शचीन्द्र ने पढ़ने में मन लगाया। उस विद्यालोचना के आधिक्य के कारण चित्त उद्भ्रान्त हो उठा। उसी से इस मानसिक रोग की सृष्टि है। इस मानसिक रोग के सहारे रजनी के प्रति हुआ वह लुप्त अनुराग फिर जग गया। अब शचीन्द्र में वह मानसिक शक्ति नहीं रह गई थी जिससे वे उस धृत अनुराग को प्रशमित करते। सविशेष पहले ही कह चुका हूँ कि इन सब मानसिक पीड़ाओं का कारण यह है कि जो गुप्त मनोभाव विकसित हो उठता है वह अप्राकृतिक हो जाता है। तब वह सन्निपात जैसा मालूम देता है। वैसा ही यह विकार है।"

तब मैंने व्याकुल होकर पूछा, "इसके प्रतिकार का कौन-सा उपाय होगा?"

संन्यासी ने कहा, "मैं डाक्टरी-शास्त्र का कुछ भी नहीं जानता। डाक्टरों से इस रोग का उपशम हो सकता है या नहीं, यह ठीक तौर से नहीं कह सकता, परन्तु डाक्टरों ने कभी ऐसे रोग का निराकरण किया है, ऐसा मैंने नहीं सुना।"

मैंने कहा, "बहुत-से डाक्टरों को दिखलाया गया है, कोई उपकार नहीं हुआ।"

सं०—प्रायः वैद्य और चिकित्सकों से भी कोई उपकार नहीं होगा।

मैं—तो क्या कोई उपाय नहीं?

सं०—अगर कहो तो मैं ओषधि दूँ।

मैं—आपकी ओषधि से बढ़कर किसकी ओषधि होगी? आप ही हमारे रक्षक हैं, आप ही दवा दीजिए।

सं०—तुम मकान की गृहिणी हो। तुम्हारे कहने से ही दवा दे सकता हूँ। शचीन्द्र भी तुम्हारी मानता है। तुम्हारे कहने से ही वह मेरी दवा सेवन करेगा। परन्तु केवल दवा से ही अच्छा न होगा। मानसिक पीड़ा की मानसिक चिकित्सा ज़रूरी है। रजनी होनी चाहिए।

मैं—रजनी आयेगी, मैंने बुला भेजा है।

सं०—परन्तु रजनी के आने से अच्छा होगा या बुरा होगा, यह भी विचारणीय है। ऐसा हो सकता है कि रजनी के लिए यह अप्राकृत अनुराग रुग्ण अवस्था में मुलाक़ात होने पर गहरे पहुँच स्थायी होगा। अगर रजनी से ब्याह न हो तो उसका न आना ही अच्छा है।

मैं—रजनी का आना अच्छा हो, बुरा हो, इसके लिए विचार का समय अब नहीं; वह देखिए, रजनी आ रही है।

उसी समय एक दासी के साथ रजनी आकर उपस्थित हुई। अमरनाथ भी शचीन्द्र की पीड़ा सुनकर शचीन्द्र को देखने के लिए स्वयं आये थे और रजनी को साथ लाकर उपस्थित किया था। खुद मकान के बाहर प्रतीक्षा करते हुए, दासी के साथ रजनी को भीतर भेज दिया था।

पञ्चम खण्ड

अमरनाथ की कथा

पहला परिच्छेद

यह अन्धी फूलवाली कौन-सी मोहिनी जानती है, यह नहीं कह सकता। आँखों में कटाक्ष नहीं, फिर भी मेरे जैसे संन्यासी को भी मोहित कर लिया। मैंने सोचा था, लवङ्गलता के बाद कभी और किसी को प्यार नहीं करूँगा। सभी मनुष्यों में अकारण दम्भ है! दूसरे की बात नहीं, मैं सहज ही इस फूलवाली से मोहित हो गया।

मन में सोचा था, यह ज़िन्दगी अमावस की रात की तरह अँधेरे में ही कटेगी, एकाएक चाँद उगा। मन में किया था, ज़िन्दगी का यह सागर तैरकर ही मुझे पार होना होगा, एकाएक सामने सोने का पुल दिखा। मन में किया था, यह मरुभूमि इसी तरह चिरकाल दग्धक्षेत्र रहेगी, रजनी एकाएक वहाँ नन्दन-कानन ले आई। मेरे इस सुख की अब सीमा नहीं। हमेशा जो अँधेरी गुहा में रहा है, एकाएक वह अगर सूर्य की किरणों से चमकते हुए, तरुपल्लव और कुसुमों से शोभित मनुष्यलोक में आ जाय तो उसे जो आनन्द है, वही मुझे हुआ। जो सदा पराधीन, दूसरे से पीड़ित दासानुदास था, वह अगर एकाएक सर्वेश्वर सार्वभौम हो जाय, तो उसे जो आनन्द है, मुझे वही आनन्द है। रजनी-जैसी जो जन्मान्ध है, सहसा उसकी आँखें खुल जाने पर जो आनन्द है, रजनी को प्यार कर मुझे वही आनन्द है।

परन्तु इस आनन्द का परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं कह सकता। मैं चोर हूँ, मेरी पीठ पर आग के अक्षरों में लिखा है कि मैं

चोर हूँ। जिस दिन रजनी उन अक्षरों पर हाथ रखकर पूछेगी, यह कैसा दाग़ है, मैं उसे क्या जवाब दूँगा? क्या यह कहूँगा कि यह कुछ नहीं है? वह अन्धी है, परन्तु जिसका सहारा लेकर संसार में मैं सुखी होना चाहता हूँ, उसे धोखा दूँगा? जो दे सकता हो, वह दे। मुझसे जब हुआ है, इससे भी बुरा काम मैंने किया है, करके फल भोग किया है, अब और क्यों? मैंने लवङ्गलता से कहा था, कुल बातें रजनी से कहूँगा, परन्तु कहते ज़बान नहीं खुली। अब कहूँगा।

जिस दिन रजनी शचीन्द्र को देख आई थी, उसी दिन पिछले पहर मैं रजनी से यह बात कहने चला। चलकर देखा रजनी अकेली बैठी हुई रो रही है। मैंने तब उससे कुछ न कह कर उसकी मौसी से पूछा, रजनी क्यों रो रही है? उसकी मौसी ने कहा, क्या मालूम? मित्रों के मकान से जब से आई है, तब से रो रही है। मैं स्वयं शचीन्द्र के पास नहीं गया, मुझसे शचीन्द्र असन्तुष्ट है, कहीं मुझे देखकर उसकी पीड़ा बढ़ न जाय, इस शङ्का से नहीं गया, इसलिए वहाँ क्या हुआ था, यह मालूम नहीं था। रजनी से पूछा, क्यों रो रही हो? रजनी आँखें पोंछ कर चुप हो रही।

मैं बहुत व्याकुल हुआ। कहा, "देखो, रजनी, तुम्हें क्या दुःख है अगर मैं मालूम कर सकूँगा तो जान हथेली पर लेकर दूर करने की कोशिश करूँगा। तुम किस दुःख से रो रही हो, मुझसे कहोगी नहीं?"

रजनी फिर रोने लगी। बड़े कष्ट से रोना रोक कर बोली, "आप इतनी दया करते हैं, परन्तु मैं इसके योग्य नहीं।"

मैं—यह क्या रजनी? मैं मन से समझता हूँ, मैं ही तुम्हारे योग्य नहीं हूँ, मैं तुमसे वही बात कहने आया हूँ।

रजनी—मैं आपकी कृपा पाई हुई दासी हूँ, मुझसे ऐसी बातें क्यों कहते हैं?

मैं—सुनो, रजनी! मैं तुमसे विवाह करके यह जन्म सुख से बिताऊँगा, यही मेरी एकान्त आशा है। मेरी यह आशा टूटी तो

शायद मेरा दम निकल जायगा; परन्तु इस आशा में भी जो विघ्न है वह तुमसे कहने आया हूँ। सुन कर जवाब देना, बिना सुने कुछ न कहना। प्रथम यौवन में रूपान्ध होकर पागल हो गया था, ज्ञान खोकर मैंने चोर का काम किया था। अङ्ग में आज भी उसका चिह्न है। यही बात तुमसे कहने आया हूँ।

फिर धीरे धीरे बड़े धैर्य से, वह न कही जानेवाली बात रजनी से कही। रजनी अन्धी है, इसी लिए कह सका। आँखें मिलाकर कहना होता तो न कह पाता।

रजनी चुप हो रही। मैंने तब कहा, "रजनी, रूपोन्माद से उन्मत्त होकर पहली जवानी में एक दिन यह अज्ञानता का काम किया था। और कभी कोई अपराध नहीं किया। सारी ज़िन्दगी उस एक दिन के अपराध का प्रायश्चित्त किया है। मुझे क्या तुम ग्रहण करोगी?"

रजनी रोती हुई बोली, "यदि सदा आपने चोरी की हो, यदि आपने सहस्र ब्रह्महत्यायें, गोहत्यायें, स्त्रीहत्यायें की हों, तो भी आप मेरे पास देवता हैं। आप मुझे चरणों में स्थान देंगे तो अवश्य मैं आपकी दासी हूँगी। परन्तु मैं आपके योग्य नहीं हूँ, यही बात आपको सुनने को बाक़ी है।"

मैं—वह क्या रजनी?

रजनी—मेरा यह पापी मन दूसरे के पास बिका हुआ है।

मैं चौंककर काँप गया—पूछा, "वह कैसे रजनी?"

रजनी ने कहा, "मैं स्त्री हूँ, इससे अधिक और आपसे किस तरह कहूँगी? परन्तु लवङ्ग देवी कुल बातें जानती हैं। अगर आप उनसे पूछें तो सब मालूम कर सकेंगे। कहिएगा, मैंने कुल बातें कहने के लिए कहा है।"

मैं उसी समय मित्रों के यहाँ गया। जिस तरह लवङ्ग से मुलाक़ात हुई, उसके वर्णन से इस छोटे से विषय में देर नहीं करूँगा। देखा, लवङ्गलता धूल में लोटती हुई शचीन्द्र के लिए रो रही है। जाने के

साथ ही कहा, "क्षमा करो, अमरनाथ, क्षमा करो ! तुम पर मैंने एक अत्याचार किया था, इसलिए विधाता मुझे दण्ड दे रहे हैं। मेरे गर्भ के लड़के से अधिक प्रिय पुत्र शचीन्द्र शायद मेरे ही दोष से जान गवाँ देगा। मैं ज़हर खाकर जान दे दूँगी। आज तुम्हारे सामने ज़हर खाकर जान दे दूँगी।

मेरा दिल बैठ गया—रजनी रो रही है, लवङ्ग रो रही है। ये स्त्रियाँ हैं, आँसू बहाती हैं; मेरे आँसू नहीं गिर रहे थे, परन्तु रजनी की बात से मेरे हृदय के भीतर से रुलाई उठ रही थी। लवङ्ग रो रही है, रजनी रो रही है, मैं रो रहा हूँ, और शचीन्द्र की यह दशा है। कौन कहता है कि संसार सुख का है ? संसार अँधेरे से भरा है।

अपने दुःख को एक ओर करके पहले लवङ्ग के दुःख की बात पूछी। लवङ्ग ने तब रोते हुए शचीन्द्र की पीड़ा का कुल हाल कहा। संन्यासी की विद्या की परीक्षा से लेकर रुग्णशय्या में रजनी से होनेवाली मुलाक़ात तक की कुल बातें लवङ्ग ने कहीं।

इसके बाद मैंने रजनी की बातें पूछीं, कहा, "रजनी ने कुल बातें कहने के लिए कहा है, कहो।"

तब रजनी से जो कुछ लवङ्ग ने सुना था, अकपटभाव से कह सुनाया।

रजनी शचीन्द्र की है, शचीन्द्र रजनी का, बीच में मैं कौन हूँ ?

इस दफ़ा कपड़े से मुँह छिपाकर रोता हुआ मैं घर लौट आया।

दूसरा परिच्छेद

इस संसार की हाट से मुझे दूकान उठानी पड़ी। मेरे भाग्य में विधाता ने सुख नहीं लिखा। दूसरे का सुख मैं क्यों छीन लूँ? शचीन्द्र की रजनी शचीन्द्र को देकर मैं यह संसार छोड़ दूँगा। यह हाट उठा दूँगा, इस हृदय पर शासन करूँगा। जो सुख और दुःख के अतीत हैं, उन्हीं के चरणों पर सब समर्पण करूँगा।

प्रभो, तुम्हारी बड़ी खोज मैंने की है, कहाँ हो तुम? दर्शन और विज्ञान में तुम नहीं हो। ज्ञानी के ज्ञान में और ध्यानी के ध्यान में तुम नहीं हो। तुम अप्रमेय हो, इसलिए तुम्हें साबित करने का प्रमाण नहीं। इस खिले उन्मुख हृदय-पद्म में ही तुम्हारा प्रमाण है, इस पर आसीन होओ। मैं अन्धी फूलवाली को छोड़कर तुम्हारी छाया वहाँ स्थापित करूँ।

क्या तुम नहीं? न रहो, तुम्हारे नाम पर मैं सब कुछ छोड़ दूँगा। "अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं......तस्मै नमः" कहकर यह कलङ्क से लाञ्छित देह छोड़ दूँगा। तुमने जो दिया है, क्या फिर से वह लोगे नहीं? तुम लोगे, नहीं तो इस कलङ्क के भार को और कौन पवित्र करेगा?

प्रभो, आपके पास एक निवेदन है। इस देह को कलङ्कित किसने कराया?—तुमने या मैंने? मैं असत्, असार जो हूँ, दोष मेरा है या तुम्हारा? मेरी यह मनिहारे की दूकान किसने सजाई?—तुमने या मैंने? जो तुमने सजाई है वह तुम्हें ही दूँगा। मैं यह व्यवसाय अब नहीं रक्खूँगा।

सुख! तुम्हें सब जगह खोजा, नहीं पाया! सुख नहीं, तब आशा से क्या काम? जिस देश में आग नहीं, उस देश में ईंधन इकट्ठा करके क्या होगा? प्रतिज्ञा की है, सब कुछ छोड़ूँगा।

× × ×

मैं दूसरे दिन शचीन्द्र को देखने गया। देखा शचीन्द्र पहले से अधिक स्थिर है, अधिक प्रफुल्ल। उससे देर तक बातचीत करता रहा। समझा, मुझ पर जो असन्तोष है, शचीन्द्र के मन से अभी तक नहीं गया।

दूसरे दिन फिर उसे देखने गया। रोज़ उसे देखने जाने लगा। शचीन्द्र की कमज़ोरी और क्लेशवाला भाव नहीं घटा, परन्तु क्रमशः स्थिरता आने लगी। बकना दूर हो गया। क्रमशः शचीन्द्र सही हालत में आया।

रजनी की बात एक दिन भी शचीन्द्र के मुँह से नहीं सुनी, परन्तु यह देखा है कि जिस दिन से रजनी आई थी उसी दिन से उसकी पीड़ा घटने लगी थी।

एक दिन जब कोई और शचीन्द्र के पास नहीं था, मैंने धीरे धीरे बिना भूमिका बाँधे रजनी की बात उठाई। क्रमशः उसके अन्धेपन की बात आई। अन्धे के दुःख की बातें कहने लगा। इस संसार की शोभा देखने से वह वञ्चित है, प्रियजनों को देखने के सुख से वह पैदा होने से मौत की घड़ी तक वञ्चित है, ये सब बातें कहने लगा। देखा, शचीन्द्र ने मुँह फेरा, आँखें डबडबा आईं।

सही अनुराग है।

तब कहा, "आप रजनी के कल्याणकामी हैं। मैं इसी लिए एक बात में आपकी राय लेना चाहता हूँ। रजनी एक तो विधाता की मारी हुई है, फिर मुझसे और भी उसे पीड़ा पहुँची है।"

शचीन्द्र ने मुझ पर बड़ी टेढ़ी नज़र डाली।

मैंने कहा, "आप अगर मन लगाकर कुल बातें सुनेंगे, मैं कुल बातें तभी कह सकूँगा।"

शचीन्द्र ने कहा, "कहिए।"

मैंने कहा, "मैं बड़ा लोभी और स्वार्थी हूँ। मैं उसके चरित्र से मोहकर उससे ब्याह करने के लिए उद्यत हुआ हूँ। वह मेरे पास कृतज्ञता से बँधी थी, इसी लिए मेरे अभिप्राय से सम्मत हुई थी।"

शचीन्द्र ने कहा, "जनाब, ये बातें मुझसे क्यों कह रहे हैं?"

मैंने कहा, "मैंने सोचकर देखा, मैं संन्यासी हूँ, अनेकानेक देश घूमता फिरता हूँ; अन्धी रजनी किस तरह मेरे साथ देश देश घूमेगी? मैं इस समय सोच रहा हूँ, कोई दूसरे सज्जन उससे ब्याह करें तो बात सुख की हो। मैं उसका दूसरे से ब्याह करना चाहता हूँ। अगर आपकी निगाह में कोई हो, इसी लिए आपसे कह रहा हूँ।"

शचीन्द्र ने कुछ आवेग से कहा, "रजनी के लिए सुपात्र की कमी नहीं होगी।" मैं समझ गया, रजनी के लिए सुपात्र कौन है।

तीसरा परिच्छेद

दूसरे दिन फिर मित्रों के घर गया। लवङ्गलता को कहला भेजा कि मैं कलकत्ता छोड़ जाऊँगा, अभी फ़िलहाल नहीं लौटूँगा, वे मेरी शिष्या हैं, मैं उन्हें आशीर्वाद दूँगा।

लवङ्गलता ने मुझसे फिर मुलाक़ात की। मैंने उससे पूछा, "मैं कल शचीन्द्र से जो कुछ कह गया हूँ, क्या तुमने सुना है?"

ल०—सुना है, तुम अद्वितीय हो। मुझे क्षमा करना, मैं तुम्हारे गुण नहीं जानती थी।

मैं चुप हो रहा। अवसर समझ कर लवङ्गलता ने पूछा, "तुमने मुझसे मिलने की इच्छा क्यों ज़ाहिर की है? सुना, तुम कलकत्ते से चले जा रहे हो?"

मैं—हाँ।

ल०—क्यों ?

मैं—जाऊँगा क्यों नहीं ? मुझे जाने से रोकनेवाला तो कोई है नहीं ।

ल०—अगर मैं रोकूँ ?

मैं—मैं तुम्हारा कौन हूँ जो रोकोगी ?

ल०—तुम मेरे कौन हो ? यह तो नहीं जानती । इस पृथ्वी में तुम मेरे कोई नहीं । परन्तु अगर दूसरा लोक हो—

लवङ्गलता और कुछ नहीं बोली । मैंने कुछ समय तक प्रतीक्षा करके कहा, "अगर दूसरा लोक हो, तो ?"

लवङ्गलता ने कहा, "मैं स्त्री हूँ, सहज ही कमज़ोर हूँ । मुझमें कितना बल है, देखकर तुम्हारा क्या होगा ? मैं यही कह सकती हूँ, मैं तुम्हारी परम मङ्गलाकांक्षिणी हूँ ।"

मैं बहुत विचलित हो गया, कहा, "इस बात पर मुझे विश्वास है । परन्तु एक बात मैं कभी समझ नहीं सका । तुम अगर मेरी मङ्गलाकांक्षिणी हो तो मेरी पीठ पर सदा के लिए यह कलङ्क क्यों लिख दिया ? यह पोंछने से नहीं मिटता, कभी नहीं मिटेगा ।"

लवङ्ग सर झुकाये खड़ी रही । कुछ देर सोचा । कहा, "तुमने बुरा काम किया था, मैंने भी बालिका-बुद्धि से बुरा काम किया था । जिसका जो दण्ड है, विधाता उसका विचार करेंगे, मैं विचार करनेवाली कौन हूँ ? इस समय वह अनुताप मेरा है, परन्तु वे बातें न उठाना ही अच्छा है । क्या तुम मेरा वह अपराध क्षमा करोगे ?"

मैं—तुम्हारे न कहते ही मैंने क्षमा कर दिया है । क्षमा भी क्या ? तुमने उचित दण्ड दिया था—तुम्हारा अपराध नहीं । मैं अब नहीं आऊँगा—और कभी तुमसे मुलाक़ात नहीं होगी । परन्तु यदि कभी इसके बाद सुनो कि अमरनाथ दुश्चरित्र नहीं तो तुम मुझ पर कुछ—अणुमात्र—स्नेह करोगी ?

ल०—तुम्हें स्नेह करने पर मैं अधर्म में गिरूँगी।

मैं—नहीं, मैं उस स्नेह का भिखारी और नहीं हूँ। तुम्हारे इस समुद्र-तुल्य हृदय में क्या मेरे लिए थोड़ी-सी भी जगह नहीं?

ल०—नहीं, जो मेरा पति न होकर मेरा प्रणयकामी हुआ था, स्वयं महादेव होने पर भी उसके लिए मेरे हृदय में जगह नहीं। लोग चिड़िया पालने पर जो स्नेह करते हैं, इस लोक में तुम्हारे लिए वह स्नेह मेरा कभी नहीं होगा।

फिर "इस लोक में" ख़ैर, मैं लवङ्ग की बात समझा या नहीं, नहीं कह सकता, परन्तु लवङ्ग मेरी बात नहीं समझी; परन्तु देखा, लवङ्ग की आँखें सजल हैं।

मैंने कहा, "मुझे जो कुछ कहना बाक़ी है, वह कह जाता हूँ। मेरे कुछ ज़मीन है, मुझे उसकी ज़रूरत नहीं। वह मैं दान किये जा रहा हूँ।"

लवङ्ग०—किसे?

मैं—जो रजनी से ब्याह करेगा, उसे।

ल०— अपनी कुल स्थावर सम्पत्ति?

मैं—हाँ, यह दानपत्र तुम इस समय अपने पास छिपाकर रखना। जब तक रजनी का विवाह नहीं होता तब तक यह बात ज़ाहिर न करना। विवाह हो जाने पर रजनी के पति को यह दानपत्र देना।

यह बात समाप्त कर ललितलवङ्गलता के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना दानपत्र उसके पास फेंक कर मैं चला गया। मैं कुल इन्तज़ाम कर आया था, फिर मैं घर लौट कर नहीं गया। एक साथ स्टेशन पहुँच कर रेल से काश्मीर-यात्रा कर दी।

दूकान उठ गई।

चौथा परिच्छेद

इसके दो साल बाद एक बार भ्रमण करता हुआ मैं भवानीनगर गया। सुना कि मित्रवंश के कोई वहाँ रह रहे हैं। कौतूहलवश मैं देखने गया। द्वार पर शचीन्द्र से मुलाक़ात हुई।

शचीन्द्र ने मुझे पहचान कर नमस्कार किया, गले लगाया और हाथ पकड़कर एक अच्छे आसन पर ले जाकर बैठाया। बड़ी देर तक उनसे नाना प्रकार की बातचीत होती रही। उनकी ज़बानी मैंने सुना कि उन्होंने रजनी से विवाह किया है; परन्तु रजनी फूलवाली थी, कलकत्ते के आदमी कहीं घृणा न करें, यह सोच कर, वे कलकत्ता छोड़कर भवानीनगर में रह रहे हैं। उनके पिता और भाई कलकत्ते में ही रह रहे हैं।

शचीन्द्र ने मुझसे मेरी अपनी सम्पत्ति लौटा लेने के लिए बड़ा अनुरोध किया। परन्तु कहना नहीं होगा कि मैंने स्वीकार नहीं किया। अन्त में शचीन्द्र ने रजनी से मुलाक़ात करने का मुझसे अनुरोध किया। मेरी भी यह इच्छा थी। शचीन्द्र मुझे अन्तःपुर में रजनी के पास ले गये।

रजनी के पास गया तो उसने प्रणाम करके मेरी पदधूलि ली। मैंने देखा कि धूल लेते वक़्त पैर छूते हुए अन्धे के स्वाभाविक नियम के अनुसार उसने इधर-उधर हाथ नहीं चलाया, सीधे मेरे पैर छुए। मुझे कुछ विस्मय हुआ।

वह मुझे प्रणाम करके खड़ी हुई, परन्तु मुँह झुकाये रही। मेरा विस्मय बढ़ा। अन्धों के आँखवाली लाज नहीं होती। आँखें मिलने पर जो लाज होती है, वह अन्धों को नहीं होती, इसलिए वे आँखें चुराने के लिए सर नहीं झुकाते। कौन एक बात मैंने पूछी, रजनी ने मुँह उठाकर फिर नत किया, देखा, सही देखा, उन आँखों में कटाक्ष था।

जन्मान्ध रजनी क्या इस तरह देख लेती है ? मैं शचीन्द्र से यह बात पूछने चला था कि शचीन्द्र ने मेरे बैठने का आसन डालने की रजनी को आज्ञा दी। रजनी एक कारपेट लाकर डाल रही थी, जहाँ डाल रही थी, वहाँ एक बूँद पानी पड़ा था; आसन रखकर आँचल से पहले पानी की बूँद पोंछ कर रजनी ने आसन डाला। मैंने अच्छी तरह देखा था, वह पानी छुए बिना आसन डालना रोककर रजनी ने पानी पोंछा था। छूकर उसने नहीं मालूम किया कि वहाँ पानी पड़ा है, उसने वह पानी देखा था।

मैं और रह नहीं सका, पूछा, "रजनी क्या अब तुम देख पाती हो ?"

मुँह झुकाकर कुछ हँसकर रजनी ने कहा, "हाँ।"

मैंने विस्मय से शचीन्द्र की तरफ़ देखा। शचीन्द्र ने कहा, "ताज्जुब ज़रूर है, परन्तु ईश्वर की कृपा से नहीं हो सकता ऐसा क्या है ? हमारे भारतवर्ष में चिकित्सा के सम्बन्ध में कुछ बड़े ताज्जुब के प्रकरण थे—वे तत्त्व बहुत काल तक परिश्रम करने पर भी योरपीय आविष्कृत नहीं कर सकेंगे। अकेली चिकित्सा ही नहीं, सभी विद्याओं में ऐसा ही था। परन्तु वे सब अब लुप्त हो गई हैं, केवल दो-एक संन्यासी-उदासियों के पास उन लुप्त विद्याओं का कुछ अंश गुप्त रीति से रह रहा है। हमारे यहाँ एक संन्यासी कभी कभी आया करते थे, वे मुझे प्यार करते थे। उन्होंने जब सुना, मैं रजनी से ब्याह करूँगा, तब कहा, शुभ दृष्टि किस तरह होगी ? लड़की अन्धी जो हो। मैंने मज़ाक़ में कहा, आप अन्धता अच्छी कीजिए। उन्होंने कहा, "करूँगा, एक महीना लगेगा।" दवा देकर एक महीने में उन्होंने रजनी की आँखों में दृष्टि पैदा कर दी।"

मैं और भी विस्मित हुआ, कहा, "बिना देखे मैं इस पर विश्वास न करता। योरपीय चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार यह असाध्य है।"

यही बात हो रही थी, ऐसे समय एक साल का एक लड़का हिलता-डुलता गिरता-उठता चलता हुआ वहाँ आया । बच्चा आकर रजनी के पैरों के पास एक पछाड़ खाकर, उसकी साड़ी का एक छोर पकड़कर खींचता हुआ उठकर, उसका घुटना पकड़कर उसका मुँह देखता हुआ खिलखिलाकर हँस दिया । इसके बाद कुछ देर मेरे मुँह की ओर देखते हुए हाथ उठाकर कहा—"दा !" "जा !"

मैंने पूछा, "यह कौन है ?"

शचीन्द्र ने कहा, "मेरा लड़का ।"

मैंने पूछा, "इसका नाम क्या रक्खा है ?"

शचीन्द्र ने कहा, "अमरप्रसाद ।"

मैं फिर वहाँ नहीं खड़ा हुआ ।